### घुमक्कड़-शास्त्र

# घुमक्छड़-शास्त्र

राहुल सांकृत्वायन

राजकमल प्रकाशन दिल्ली

#### १६४६ प्रथम संस्करण ३०००

मूल्य सवा तीन रुपया

प्रकाशक: राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड दिल्ली।

सुद्रक : गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस दिल्ली ।

#### प्राक्कथन

"धुमक्कइ शास्त्र" के लिखने की श्रावश्यकता में बहुत दिनों से श्रमुभव कर रहा था। मैं समक्तता हूं श्रोर भी समानधर्मा बन्धु इसकी श्रावश्यकता को महसूस करते रहे होंगे। धुमक्कड़ी का श्रंकुर पैदा करना इस शास्त्र का काम नहीं; बिल्क जन्मजात श्रंकुरों की पुष्टि, पिरवर्धन तथा मार्ग-प्रदर्शन इस प्रन्थ का लच्च है। धुमक्कड़ों के लिए उपयोगी सभी बातें सूचमरूप में यहां श्रा गाई हैं; यह कहना उचित नहीं होगा, किन्तु यदि मेरे धुमक्कड़ मित्र श्रपनी जिज्ञौसाश्रों श्रोर श्रमिज्ञताश्रों द्वारा सहायता करें, तो मैं समक्षता हूँ, श्रगले संस्करण में इसकी कितनी ही किमियां दूर कर दी जायंगी।

इस प्रन्थ के लिखने में जिनका श्राग्रह और प्रेरेण। कारण हुई, उन सबके लिए मैं हार्दिक रूप से कृतज्ञ हूं। श्री महेश जी श्रोर श्री कमला परिवार ने श्रपनी लेखनी द्वारा जिस तत्परता से सहायता की हैं, उसके लिए उन्हें में श्रपनी श्रोर पाठकों की श्रीर से भी धन्यवाद देना चाहता हूं। उनकी सहायता बिना वर्षों से महितक में चक्कर लगाते विचार कागज पर न उतर सकते।

नई दिल्ली य-य-४१ राहुल सांकृत्यायन

## सूची

 9
 92
 २ ६
 35
 40
 48
 ७३
 <b>48</b>
 88
 308
 993
 128
 934
 384
 344

### श्रथातो घुमक्कड्-जिज्ञासा

संस्कृत से प्रन्थ को शुरू करने के लिए पाठकों को रोष नहीं होना चाहिए। त्राखिर हम शास्त्र लिखने जा रहे हैं, फिर शास्त्र की परिपाटी को तो मानना ही पड़ेगा। शास्त्रों में जिज्ञासा ऐसी चीज के लिए होनी बतलाई गई है, जोकि श्रेष्ठ तथा न्यक्ति और समाज सबके लिए परम हितकारी हो। व्यास ने अपने शास्त्र में ब्रह्म को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसे जिज्ञासा का विषय बनाया । ब्यास-शिष्य जैमिनि ने धर्म को श्रेष्ठ माना । पुराने ऋषियों से मतभेद रखना हमारे लिए पाप की वस्तु नहीं है. श्राखिर छ शास्त्रों के रचयिता छ श्रास्तिक ऋषियों में भी श्राधों ने ब्रह्म को धत्ता बता दिया है। मेरी समक्त में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ से बढ़कर व्यक्ति श्रीर समाज का कोई हित-कारी नहीं हो सकता। कहा जाता है, ब्रह्म ने सृष्टि को पेदा, धारण श्रौर नाश करने का जिम्मा अपने ऊपर लिया है। पैदा करना और नाश करना दर की वातें हैं, उनकी यथार्थता सिद्ध करने के लिए न प्रत्यच प्रमाण सहायक हो सकता है, न श्रनुमान ही। हां, दुनिया के धारण की बात तो निश्चय ही न ब्रह्मा केऊपर है, न विष्णु के ग्रीर न शंकर ही के ऊपर। दुनिया—दुःखमें हो चाहे सुख में — सभी समय यदि सहारा पाती है, तो घुमक्कड़ों की ही श्रोर से। प्राकृतिक श्रादिम मनुष्य परम घुम-क्कड़ था। खेती, बागबानी तथा घर-द्वार से मुक्त वह आकाश के पिचयों की भाँति पृथिवी पर सदा विचरण करता था, जाड़े में यदि इस जगह था तो गर्भियों में वहाँ से दो सौ कोस दूर।

श्रापुनिक काल में घुमक्कड़ों के काम की बात कहने की श्राव-रयकता है, क्योंकि लोगों ने घुमक्कड़ों की कृतियों को चुराके उन्हें गला फाड़-फाड़कर श्रपने नाम से प्रकाशित किया, जिससे दुनिया जानने लगी कि वस्तुतः तेली के कोल्हू के बेल ही दुनिया में सब कुछ करते हैं। श्राघुनिक विज्ञान में चार्लस डारविन का स्थान बहुत ऊंचा है। उसने प्राणियों की उत्पत्ति श्रोर मानव-वंश के विकास पर ही श्रद्धितीय खोज नहीं की, बल्कि सारे ही विज्ञानों को उससे सहायता मिली। कहना चाहिए, कि सभी विज्ञानों को डारविन के प्रकाश में दिशा बदलनी पड़ी। लेकिन क्या डारविन श्रपने महान् श्राविक्कारों को कर सकता था, यदिः उसने घुमक्कड़ी का वत नहीं लिया होता?

मैं मानता हूं, पुस्तकें भी कुछ-कुछ घुमक्कड़ी का रस प्रदान करती: हैं, लेकिन जिस तरह फोटो देखकर श्राप हिमालय के देवदार के गहन वनों श्रोर श्वेत हिम-मुकुटित शिखरों के सौन्दर्य, उनके रूप, उनके गंध का श्रनुभव नहीं कर सकते, उसी तरह यात्रा-कथार्थ्यों से श्रापको उस बूंद से भेंट नहीं हो सकती, जो कि एक घुमक्कड़ को प्राप्त होती हैं। श्रधिक-से-श्रधिक यात्रा-पाठकों के लिए यही कहा जा सकता है, कि दूसरे श्रन्थों की श्रपेत्ता उन्हें थोड़ा श्रालोक मिल जाता है श्रौर साथ ही ऐसी प्रेरणा भी मिल सकती है, जो स्थायी नहीं तो उन्छ दिनों के लिए उन्हें घुमक्कड़ बना सकती हैं। घुमक्कड़ क्यों दुनिया की सर्वश्रेष्ट विभूति है ? इसीलिए कि उसीने द्याज की दुनिया को बनाया है। यदि श्रादिम-पुरुष एक जगह नदी या तालाब के किनारे गर्म मुल्क में पढ़े रहते, तो वह दुनिया को श्वागे नहीं ले जा सकते थे। श्रादमी की घुम-क्कड़ी ने बहुत बार खून की नदियाँ बहाई हैं, इसमें संदेह नहीं, श्रीर शुमक्कड़ों से हम हर्गिज नहीं चाहेंगे कि वह खून के रास्ते को पकड़ें, किन्तु श्रगर घुमक्कड़ों के काफिले न श्राते जाते, तो सुस्त मानव-जातियाँ सो जातीं, और पशु से ऊपर नहीं उठ पातीं। स्रादिम शुमक्कड़ों में से आर्यो, शकों, हूर्णों ने क्या-क्या किया, श्रपने ख्नी पर्थो द्वारा मानवता

के पथ को किस तरह प्रशस्त किया, इसे इतिहास में हम उतना स्पष्ट वर्णित नहीं पाते, किन्तु मंगोल-धुमक्कड़ों की करामातों को तो हम श्रष्ट्छी तरह जानते हैं। बारूद, तोप, कागज, छापाखाना, दिग्दर्शक, चरमा यही चीजें थीं, जिन्होंने पिच्छम में विज्ञान-युग का श्रारम्भ कराया, श्रीर इन चीजों को वहां ले जानेवाले मंगोल धुमक्कड़ थे।

कोलम्बस श्रौर वास्को द-गामा दो घुमक्कड़ ही थे, जिन्होंने पश्चिमी देशों के श्रागे बढ़ने का रास्ता खोला। श्रमेरिका श्रधिकतर निर्जन-सा पड़ा था। एसिया के कूप-मंडूकों को घुमक्कड़-धर्म की मिहमा भूल गई, इसलिए उन्होंने श्रमेरिका पर धपनी मंडी नहीं गाड़ी। दो शताब्दियों पहले तक श्रास्ट्रे लिया खाली पड़ा था। चीन श्रौर भारत को सभ्यता का बड़ा गर्व है, लेकिन इनको इतनी श्रक्क नहीं श्राई, कि जाकर वहां श्रपना मंडा गाड़ श्राते। श्राज श्रपने ४०-४० करोड़ की जनसंख्या के भार से भारत श्रौर चीन की भूमि दबी जा रही है, श्रौर श्रास्ट्रे लिया में एक करोड़ भी श्रादमी नहीं हैं। श्राज एसियायियों के लिए श्रास्ट्रे लिया का द्वार बन्द है, लेकिन दो सदी पहले वह हमारे हाथ की चीज़ थी। क्यों भारत श्रौर चीन श्रास्ट्रे लिया की श्रपार संपत्ति श्रौर श्रमित भूमि से वंचित रह गए ? इसीलिए कि वह घुमक्कड़-धर्म से विमुख थे, उसे भूल चुके थे।

हाँ, मैं इसे भूलना ही कहूँगा, क्योंकि किसी समय भारत श्रीर चीन ने बढ़े-बढ़े नामी घुमक्कड़ ऐदा किये। वे भारतीय घुमक्कड़ ही थे, जिन्होंने दिखण-प्रब में लंका, बर्मा, मलाया, यवद्वीप, स्याम, कम्बोज, चम्पा, बोनियो श्रीर सेलीबीज ही नहीं, फिलिपाईन तक का धावा मारा था, श्रीर एक समय तो जान पड़ा कि न्यूजीलेंड श्रीर श्रास्ट्रे लिया भी बृहत्तर भारत का श्रंग बनने वाले हैं; लेकिन कूप-मंड्कता तेरा सत्यानाश हो! इस देश के बुद्धुओं ने उपदेश करना श्रुरू किया, कि समुन्दर के खारे पानी श्रीर हिन्दू-धर्म में बड़ा वैर है, उसके छूनेमात्र से वह नमक की पुतली की तरह गल जायगा। इतना

बतला देने पर क्या कहने की आवश्यकता है, कि समाज के कल्याण के लिए घुमक्कइ-धर्म कितनी आवश्यक चील है ? जिस जाति या दंश ने इस धर्म को अपनाया, वह चारों फलों का भागी हुआ, और जिसने इसे दुराया, उसके लिए नरक में भी ठिकाना नहीं। आखिर घुमक्कइ-धर्म को भूलने के कारण ही हम सात शताब्दियों तक धक्का खाते रहे, ऐरे-गैरे जो भी आये, हमें चार लात लगाते गये।

शायद किसीको संदेह हो कि मैंने इस शास्त्र में जो युक्तियाँ दी हैं, वह सभी लौकिक तथा शास्त्र-बाह्य हैं। श्रन्छा तो धर्म से प्रमाख लीजिए। दुनिया के श्रधिकांश धर्मन।यक द्यमनकड़ रहे। धर्माचार्यों में श्राचार-विचार, बुद्धि श्रीर तर्क तथा सहदयता में सर्वश्रेष्ठ बुद्ध बुमक्कड़-राज थे। यद्यपि वह भारत से बाहर नहीं गये, लेकिन वर्षा के तीन मासों को छोड़कर एक जगह रहना वह पाप सममते थे। वह अपने ही घुमक्कड़ नहीं थे, बल्कि आतम्भ ही में अपने शिष्यों को उन्हों-ने कहा था—''चरथ भिक्खवे ! चारिकं'' जिसका ग्रर्थ है— भिचुन्नो ! धुमक्कड़ी करो। बुद्ध के भित्तुओं ने अपने गुरू की शित्ता को कितना माना, क्या इसे बताने की श्रावश्यकता है ? क्या उन्होंने पश्चिम में मकदूनिया तथा मिश्र से पूरव में जापान तक, उत्तर में मंगोलिया से लेकर दिचण में बाली और बांका के द्वीपों तक को शैंदकर स्ख नहीं दिया ? जिस बृहत्तर-भारत के जिए हरेक भारतीय को उचित श्रिभान है, क्या उसका निर्माण इन्हीं घुमक्कड़ों की चरण-धृत्ति ने नहीं किया ? केवल बुद्ध ने ही श्रपनी धुमक्कड़ा से प्रेरणा नहीं दी, बल्कि धुमक्कड़ों का इतना ज़ार बुद्ध से एक दो शताब्दियों पूर्व भी था, जिसके ही कारण बुद्ध जैसे घुमक्कड़-राज इस देश में पैदा हो सके। उस वक्त पुरुष ही नहीं, स्त्रियाँ तक जम्बू-वृत्त की शाखा ले श्रपनी शखर प्रतिभा का जौहर दिखातीं, वाद में कूपमंडूकों की पराजित करती सारे भारत में सुक्त होकर विचरा करती थीं।

कोई-कोई महिलाएं पूलुती हैं - क्या स्त्रियाँ भी घुमक्कड़ी कर

सकती हैं, क्या उनको भी इस महावत की दीचा लेनी चाहिए ? इसके बारे में तो श्रलग श्रध्याय ही लिखा जाने वाला है, किन्तु यहाँ इतना, कह देना है, कि घुमक्कड़-धर्म ब्राह्मण्-धर्म जैसा संकुचित धर्म नहीं है, जिसमें स्त्रियों के लिए स्थान नहीं हो। स्त्रियाँ इसमें उतना ही श्रधिकार रखती हैं, जितना पुरुष। यदि वह जन्म सफल करके व्यक्ति श्रीर समाज के लिए कुछ करना चहती हैं, तो उन्हें भी दोनों हाथों इस धर्म को स्वीकार करना चाहिए। घुमक्कड़ी-धर्म छुड़ाने के लिए ही पुरुष ने बहुत से बंधन नारी के रास्ते में लगाये हैं। छुद्ध ने सिर्फ पुरुषों के लिए घुमक्कड़ी करने का श्रादेश नहीं दिया, बिल्क स्त्रियों के लिए भी उनका वही उपदेश था।

भारत के प्राचीन धर्मों में जैन धर्म भी है। जैन धर्म के प्रतिदराएक श्रमण महावीर कौन थे ? वह भी धमक्कड-राज थे। धमक्कड-धर्म के श्राचरण में छोटी-से-बड़ी तक सभी बाघात्रों श्रीर उपाधियों को उन्होंने त्याग दिया था-धर-हार अरी नारी-संतान ही नहीं, वस्त्र का भी वर्जन कर दिया था। "करतलभिचा, तरुतल वास" तथा दिग-ग्रम्बर को उन्होंने इसीलिए अपनाया था. कि निहुन्द्र विचरण में कोई बाधा न रहे। खेताम्बर-बन्ध दिगम्बर कहने के लिए भाराज नहीं। बस्तत: हमारे वैशालिक महान घुमकड कुछ बातों में दिगम्बरों की कल्पना के ऋतुसार थे श्रोर छळ बातों में श्वेताम्बरों के उल्बेख के श्रनुसार । लेकिन इसमें तो दोनों संप्रदाय और बाहर के मर्मज़ भी सहसत हैं. कि भगवान महा-वीर दसरी तीसरी नहीं, प्रथम श्रेणीके घुमकड़ थे। वह त्राजीवन वूमते ही रहे । बैशाली में जन्म लेकर विचरण करते ही पावा में उन्होंने श्रपना शारीर छोडा । ब्रद्ध और महावीर से बढ़कर यदि कोई त्याग, तपस्या श्रीर सहदयता का दावा करता है, तो मैं उसे केवल दम्भी कहींगा। श्राज-कल ऋटिया या श्राश्रम बनाकर तेली के बैल की तरह कोव्ह से बंधे कितने भी लोग अपने को श्रद्धितीय महात्मा कहते हैं या चेलों से कहलवाते हैं; लेकिन मैं, तो कहूँगा, घुमक्कड़ी को त्यागकर यदि महा- पुरुष बना जाता, तो फिर ऐसे लोग गली-गली में देखे जाते। मैं तो जिज्ञासुश्रों को खबरदार कर देना चाहता हूँ, कि वह ऐसे मुलम्मेशले महारमाश्रों श्रीर महापुरुषों के फेर से बचे रहें। वे स्त्रयं तेजी के बेज तो हैं ही, दूसरों को भी श्रपने ही जैसा बना रखेंगे।

बुद्ध और महाबीर जैसे सृष्टिकर्त्ता ईरबर से इनकारी महा-पुरुषों की घुमक्कड़ी की बात से यह नहीं मान लेना होगा, कि दूसरे लोग ईश्वर के भरोसे गुफा या कोठरी में बैठकर सारी सिद्धियां पा गए या पा जाते हैं। यदि ऐसा होता, तो शंकराचार्य, जो साचात ब्रह्मस्वरूप थे, क्यों भारत के चारों कोनों की खाक छानते फिरे ? शंकर को शकर किसी ब्रह्म ने नहीं बनाया. उन्हें बड़ा बनाने वाला था यही ब्रमक्कड़ी धर्म। शंकर बराबर घुमते रहे-श्राज केरल देश में थे तो कुछ ही महीने बाद मिथिला में, श्रीर श्रगले साल काश्मीर या हिमा-लय के किसी दूसरे भाग में। शंकर तरुणाई में ही शिवलोक सिधार गए, किंतु थोड़े से जीवन में उन्होंने सिर्फ तीन भाष्य ही नहीं लिखे: बल्कि अपने आचरण से अनुयायियों को वह धुमक्रही का पाठ पढ़ा गए, कि श्राज भी उसके पालन करने वाले सैकडों मिलते हैं। वास्को-द-गामा के भारत पहुँचने से बहत पहिले शंकर के शिष्य मास्को श्रीर योरुप तक पहुँचे थे। उनके साहसी शिष्य सिर्फ भारत के चार धार्मों से ही सन्तुष्ट नहीं थे, बल्कि उनमें से कितनों ने जाकर बाकू ( रूस ) में धूनी रमाई। एक ने पर्यटन करते हुए बोल्गा तट पर निज्नीनो-वोग्राद के महामेले को देखा। फिर क्या था, कुछ समय के लिए वहीं डट गया और उसने ईसाइयों के भीतर कितने ही अनुयायी पैदा कर लिए. जिनकी संख्या भीतर-ही-भीतर बढ़ती इस शताब्दी के श्रारम्भ में कुछ लाख तक पहुंच गई थी।

रामानुज, मध्वाचार्य श्रीर दूसरे वैष्णवाचार्यों के श्रनुयायी मुक्ते चमा करें, यदि मैं कहूं कि उन्होंने भारत में कूर मंडूकता के प्रचार में बड़ी सरगर्मी दिखाई। भला हो, रामानन्द श्रीर चैतन्य का, जिन्होंने कि पक से पंकज बनकर श्रादिकाल से चले श्राते महान् श्रुमक्कड़ धर्म की फिर से प्रतिष्ठापना की, जिसके फलस्वरूप प्रथम श्रे था के तो नहीं किंतु द्वितीय श्रे था के बहुत-से श्रुमक्कड़ उनमें भी पैदा हुए। ये बेचारे बाकू की बड़ी ज्वालामाई तक कैसे जाते, उनके लिए तो मानसरोवर तक पहुँचना भी मुश्किल था। श्रुपने हाथ से खाना बनाना, मांस श्रंड से छू जाने पर भी धर्म का चला जाना, हाड़-तोड़ सर्दी के कारण हर लघुशंका के बाद बर्फीले पानी से हाथ धोना श्रौर हर महाशंका के बाद स्नान करना तो यमराज को निमन्त्रण देना होता, इसीलिए बेचारे फूंक फूंककर ही घुमक्कड़ी कर सकते थे। इसमें किसे उन्न हो सकता है, कि शैव हो या वैष्णव, वेदान्ती हो या सदान्ती, सभी को श्रागे बढ़ाया केवल घुमक्कड़-धर्म ने।

महान् घुमक्कद-धर्म, बौद्ध धर्म का भारत से लुप्त होना क्या था, तब से कूप-मंड्रकता का हमारे देश में बोलबाला हो गया। सात शताब्दियाँ बीत गईं, श्रीर इन सातों शताब्दियों में दासता श्रीर परतन्त्रता हमारे देश में पैर तोड़कर बैठ गई, यह कोई आकिस्मिक बात नहीं थी। लेकिन समाज के अगुश्रों ने चाहे कितना ही कूप-मंद्रक बनाना चाहा, खेकिन इस देश में माई-के-लाल जब-तब पैटा होते रहे. जिन्होंने कर्म-पथ की श्रोर संकेत किया। इमारे इतिहास में गुरु नानक का समय दर का नहीं है, लेकिन अपने समय के वह महान् घुमक्दड़ थे। उन्होंने भारत-श्रमण को ही पर्याप्त नहीं समका श्रीर ईरान श्रीर श्ररब तक का धावा मारा । घुमक्कड़ी किसी बड़े योग से कम सिद्धिदायिनी नहीं है. श्रीर निर्भीक तो वह एक नम्बर का बना देती है। धुमक्कड़ नानक मक्के में जाके काबा की श्रोर पैर फैलाकर सो गए. मुल्लों में इतनी सहिष्णुता होती तो श्रादमी होते । उन्होंने एतराज किया और पैर पकड़के दूसरी श्रीर करना चाहा। उनको यह देखकर बढ़ा श्रचरज हुआ कि जिस तरफ घुमक्कड़ नानक का पैर घूम रहा है, काबा भी उसी श्रोर चला जा रहा है। यह है चमत्कार ! आज के सर्वशक्तिमान, किंतु कोठरी में बंद महात्मात्रों में है कोई ऐसा, जो नानक की तरह हिम्मत श्रीर चमत्कार दिखलाए ?

दूर शताब्दियों की बात छोड़िए, अभी शताब्दी भी नहीं बीती, इस देश से स्वामी द्यानन्द को विदा हुए। स्वामी द्यानन्द को ऋषि द्यानन्द किसने बनाया? घुमक्कड़ी धर्म ने। उन्होंने भारत के अधिक भागों का अमण किया; एस्तक लिखते, शास्त्रार्थ करते वह बराबर अमण करते रहे। शास्त्रों को पढ़कर काशी के बड़े-बड़े पंडित महा-महा-मंड्रक बनने में ही सफल हांते रहे, इसलिए द्यानन्द को मुक्त-बुद्धि और तर्क-प्रधान बनाने का कारण शास्त्रों से अलग कहीं द्वं दना होगा। अशेर वह है उनका निरन्तर घुमक्कड़ी धर्म का सेवन। उन्होंने समुद्र यात्रा करने, हीप-हीपांतरों में जाने के विरुद्ध कितनी थोथी दलीलें दी जाती थीं, सबको चिद्दी-चिद्दी उड़ा दिया और बतलाया कि मनुष्य स्थावर वृत्त नहीं है, वह जंगम प्राणी है। चलना मनुष्य का धर्म है, जिसने इसे छोड़ा वह मनुष्य होने का अधिकारी नहीं है।

बीसवीं शताब्दी के भारतीय घुमक्कड़ों की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं। इतना लिखने से मालूम हो गया होगा कि संसार में यदि कोई अनादि सनातन धर्म है, तो वह घुमक्कड़ धर्म है। लेकिन वह संकुचित सम्प्रदाय नहीं है, वह आकाश की तरह महान् है, समुद्र की तरह विशाल है। जिन धर्मों ने अधिक यश और महिमा प्राप्त की है, वह केवल घुमक्कड़-धर्म ही के कारण। प्रमु ईसा घुमक्कड़ थे, उनके अनुयायी भी ऐसे घुमक्कड़ थे, जिन्होंने ईसा के संदेश को दुनिया के कोने-कोने में पहुँचाया। यहूदी पैगम्बरों ने घुमक्कड़ी धर्म को मुला दिया, जिसका फल शताब्दियों तक उन्हें भोगना पड़ा। उन्होंने अपने जान चूल्हे से सिर निकालना नहीं चाहा। घुमक्कड़-धर्म की ऐसी भारी अवहेलना करने वाले की जैसी गति होनी चाहिए वैसी गति उनकी हुई। चूल्हा हाथ से छूट गया और सारी दुनिया में घुमक्कड़ी करने को मजबूर हुए, जिसने आगे उन्हें मारवाड़ी सेठ बनाया;

या यों कहिये कि घुमक्कड़ी-धर्म की एक छींट पड़ जाने से मारवाड़ी सेठ भारत के यहुदी बन गए । जिसने इस धम की अबहेजना, की उसे रकत के आंस् बहाने पड़े। अभो इन बेवारों ने बड़ी कुर्बानी के बाद श्रीर दो हजार वर्ष की घुनक्कड़ी के तजर्बे के वल पर फिर ग्रपना स्थान प्राप्त किया । ग्राशा है स्थान प्राप्त करने से वह चुल्हे में सिर रखकर बेठने वाले नहीं बनेंगे। अस्तु। सनातन-धर्म से पतित यहूदी जाति को महान पाप का प्रायश्चित या दग्ड धुमक्कड़ी के रूप में भोगना पड़ा, और श्रव उन्हें पेर रखने का स्थान मिला। श्राज भारत तना हुआ है। वह यहदियों की भूमि और राज्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। जब बड़े-बड़े स्वीकार कर चुके हैं, तो कितने दिनों तक यह हठधर्मी चलेगी ? लेकिन विषयान्तर में न जाकर इमें यह कहना था कि यह धुमक्कड़ी धर्म है, जिसने यहदियों को वंबल च्यापार-कुशल उद्योग-निष्णात ही नहीं बनाया, बल्कि बिज्ञान, दर्शन, साहित्य, संगीत सभी चेत्रों में चमकने का मौका दिया। समका जाता था कि व्यापारी तथा घुमक्कड़ यहुदी युद्ध-विद्या में कच्चे निकलेंगे; लेकिन उन्होंने पाँच-पाँच अरबी साम्राज्यों की मारी शेखी को धूल में मिलाकर चारों खाने चित्त कर दिया और सबने नाक रगड़कर उनसे शांति की भिचा मांगी।

इतना कहने से श्रव कोई संदेह नहीं रह गया, कि घुमन्कड़ धर्म से बढ़कर दुनिया में धर्म नहीं है। धर्म भी छोटी बात है, उसे घुमन्कड़ के साथ लगाना "महिमा घटा समुद्र की, रावण बसा पड़ोस" वाली बात होगी। घुमन्कड़ होना शादमी के लिए परम सोभाग्य की बात है। यह पन्थ अपने श्रनुयायी को मरने के बाद किसी कालपनिक स्वर्ग का प्रलोभन नहीं देता, इसके लिए तो कह सकते हैं—"क्या खूय सौदा नक्द है, इस हाथ ले इस हाथ दे।" घुमन्कड़ी बही कर सकता है, जो निश्चित है। किन साधनों से सम्पन्न होकर श्रादमी घुमक्कड़ बनने का श्रविकारी हो सकता है, यह श्रागे बतलाया

जायगा, किंतु घुमक्कड़ी के लिए चिंताहीन होना आवश्यक है, और चिंताहीन होने के लिए घुमक्कड़ा भी आवश्यक है। दोनों का अन्योन्याश्रय होना दूषण नहीं भूषण है। घुमक्कड़ी से बदकर सुख कहां मिल सकता है? आखिर चिन्ता-हीनता तो सुख का सबसे स्पष्ट रूप है। घुमक्कड़ी में कप्ट भी होते हैं, लेकिन उसे उसी तरह समिन्ये, जैसे भोजन में मिर्च। मिर्च में यदि कड़वाहट न हो, तो व्या कोई मिर्च- श्रेभी उसमें हाथ भी लगायेगा? वस्तुतः घुमक्कड़ी में कभी-कभी होने वाले कड़वे अनुभव उसके रस को और बढ़ा देते हैं, उसी तरह जैसे काली पृष्ठभूमि में चित्र अधिक खिल उठता है।

व्यक्ति के लिए घुमक्कड़ी से बढ़कर कोई नकद धर्म नहीं है। जाति का भविष्य द्यमक्कड़ों पर निर्भर करता है, इसलिए मैं कहुँगा कि हरेक तरुण श्रीर तरुणी की घुमक्कइ-वत प्रइण करना चाहिए, इसके विरुद्ध दिये जाने वाले सारे प्रमाणों को मूठ और न्यर्थ का सममना चाढिए । यदि माता-पिता विरोध करते हैं. तो सममना चाहिए कि वह भी प्रह्लाद के माता-पिता के नवीन संस्करण हैं। यदि हित-बान्धव बाधा उपस्थित करते हैं. तो समक्तना चाहिए कि वे दिवांध हैं।यदि धर्म-धर्माचार्यं कुछ उलटा-भीधा तर्क देते हैं, तो समम लेना चाहिए कि इन्हीं ढोंगों श्रीर ढोंगियों ने संसार को कभी सरत श्रीर सच्चे पथ पर चलने नहीं दिया। यदि राज्य श्रीर राजसी-नेता श्रपनी कानूनी रुकावटें डालते हैं, तो हजारों बार की तजबी की हई बात है. कि महानदों के वेग की तरह धुमक्कड़ की गति को रोकनेवाला दुनिया में कोई पैदा नहीं हुआ। बड़े-बड़े कठोर पहरेवाली राज्य-सोमाओं को घुमक्कड़ों ने श्रांख में घूल क्लोंककर पार कर लिया। मैंने स्वयं ऐसा एक से ऋधिक बार किया है। (पहली तिब्बत यात्रा में श्रंप्रोजों, नेपाल-राज्य श्रोर तिब्बत के सीमा-रक्तकों की श्रांख में धून मोंककर जाना पड़ा था।)

संचेप में हम यह कह सकते हैं, कि यदि कोई तहण-तहणी युम-

क्कड़ं धर्म की दीला लेता है—यह मैं श्रवश्य कहूँगा, कि यह दीला वही ले सकता है, जिसमें बहुत भारी मात्रा में हर तरह का साहस है—तो उसे किसीकी बात नहीं सुननी चाहिए, न माता के श्रांस् बहने की परवाह करनी चाहिए, न पिता के भय श्रौर उदास होने की, न भूज से विवाह लाई श्रपनी पत्नी के रोने-धोने की फिक्र करनी चाहिए श्रौर न किसी तरुणी को श्रमागे पित के कलपने की। बस शंकराचार्य के शब्दों में यही सममना चाहिए—''निस्त्रेगुएये पिश्व विचरत: को विधिः को निषेधः' श्रौर मेरे गुरु कपोतराज के वचन को श्रपना पथप्रदर्शक बनाना चाहिए—

"सैर कर दुनिया की गाफिल, जिन्दगानी फिर कहां ? जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहां ?"

दुनिया में मानुष-जन्म एक ही बार होता है श्रीर जवानी भी केवल एक ही बार श्राती है । साहसी श्रीर मनस्वी तहरण तहिंग्यों को इस श्रवसर से हाथ नहीं धोना चाहिए । कमर बांघ लो भावी सुमक्कड़ो ! संसार तुम्हारे स्वागत के लिए बेकरार है।

### जंजाल तोड़ो

दुनिया-भर के साधुओं-संन्यासियों ने "गृहकारज नाना जंजाला" कह उसे तोड़कर बाहर श्राने की शिचा दी है। यदि घुमक्कड़ के लिए भी उसका तोड़ना श्रावश्यक है, तो यह न सममना चाहिए कि घुमक्कड़ का ध्येय भी श्रात्म-सम्मोह या परवंचना है। घुमक्कड़-शास्त्र में जो भी बातें कही जा रही हैं, वह प्रथम या श्राधिक से-श्राधिक द्वितीय श्रेणी के घुमक्कड़ों के लिए हैं। इसका मतलब यह नहीं, कि यदि प्रथम श्रीर द्वितीय श्रेणी का घुमक्कड़ नहीं हुश्रा जा सकता तो उस मार्ग पर पेर रखना ही नहीं चाहिए। बैसे तो गीता को बहुत छुत्र नई बोतल में पुनानी शाव श्रीर दर्शन तथा उच्च धर्माचार के नाम पर लोगों को पथअष्ट करने में ही सफलता मिनी है, किन्तु उसमें कोई-कोई बात सच्ची भी निकल श्राती हैं। "न चैकमिप सत्त्यं स्थान पुरुष बहुभाषिणि" (बहुत बोलने वाले श्रादमी की एकाध बात सच्ची भी हो जाती हैं) यह बात गीता पर जागू सममनी चाहिए, श्रीर वह सच्ची बात हैं—

"मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतित सिद्धये।"

इसिलए प्रथम श्रेणी के एक घुमक्कड़ को पैदा करने के लिए हजार द्वितीय श्रेणो के घुमक्कड़ों की श्रावश्यकता होगी। द्वितीय श्रेणी के एक घुमक्कड़ के लिए हजार तृतीय श्रेणी के। इस प्रकार घुमक्कड़ी के मार्ग पर जब लाखों की संख्या में लोग चलेंगे तो कोई-कोई उनमें श्रादर्श घुमक्कड़ बन सकेंगे।

ं हाँ, तो श्रमक्कड के लिए जंजाल तोडकर बाहर श्राना पहली त्रावश्यकता है। कौनसा तरुण है, जिसे श्राँख खुलने के समय से दुनिया बूमने की इच्छा न हुई हो । मैं समसता हं, जिनकी नसों में गरम ख़न है, उनमें कम ही ऐसे होंगे, जिन्होंने किसी समय घर की चाहार-दीवारी तोड़कर बाहर निकलने की इच्छा नहीं की हो। उनके रास्ते में बाधाएं जरूर हैं। बाहरी दुनिया से अधिक बाबाए आदमी के दिल में होता है। तरुण अपने गांव या महल्ते की याद करके रोने लगते हैं, वह अपने परिचित घरों और दीवारों, गिलयों और सडकों. नदियों और तालाबों को नजर से दूर करने में बड़ी उदासी अनुभव करने लगते हैं। घुमक्कड होने का यह अर्थ नहीं कि अपनी जनमभूमि से उसका श्रेम न हो। "जन्मभूमि मम पुरी सहावनि" विलक्क ठीक बात है। बल्कि जनमभूमि का प्रेम श्रीर सम्मान पूरी तरह से तभी किया जा सकता है, जब श्रादमी उससे दूर हो। तभी उसका सुन्दर चित्र मानसपरल पर श्राता है. श्रीर हृदय तरह-तरह के मधुर भावों से श्रोत-श्रोत हो जाता है। विष्नबाधा का भय न रहने पर धुमक्कड पांच-दस साल बाद उसे देख थाए, श्रपने पुराने मित्रों से मिल श्राए, यह कोई ख़री बात नहीं है: लेकिन प्रेम का श्रर्थ उसे गाँठ बांध करके रखना नहीं है। श्राखिर घ्रमक्कड़ी जीवन में श्रादमी जितना दूर-दूर जाता है, उसके हित-मित्रों की संख्या भी उसी तरह बढती है। सभी जगह स्नेष्ठ श्रीर प्रेम के धारी उसे बांधने की तैयारी करते हैं। यदि ऐसे फंदे में वह फंसना चाहे, तो भी कैसे सबकी इच्छा को पूरा कर सकता है ? जिस भूमि, गांव या शहर ने हमें जन्म दिया है, उसे शत-शत प्रणाम है; उसकी मधुर स्मृति हमारे लिए प्रियतम निधि है, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन, यदि वह भूमि पैरों को पकड़कर हमें जंगम से स्थावर बनाना चाहे तो यह ब्रही बात है। मनुष्य से पशु ही नहीं बल्कि एकाएक वनस्पति जाति में पतन-यह मनुष्य के लिए स्पृह्णीय नहीं हो सकता। हरेक मनुष्य का जन्म-स्थान के प्रति

एक कर्त्तन्य है, जो मन में उसकी मधुर स्पृति श्रीर कार्य से कृतज्ञता प्रकट कर देने मात्र से पूरा हो जाता है।

माता-धुमक्कड़ी का श्रंकुर किस श्रायु में उद्गृत होता है, किस श्रायु में वह परिपूर्णता को प्राप्त होता है, किस समय श्रमिनिष्क्रमण करना चाहिए. यह किसी अगले अध्याय का विषय है। लेकिन जंजाल तोड़ने की बात कहते हुए भी यह बतला देना है, कि भावी घुनक्कड़ के तरुग-हृदय और मस्तिष्क को बंघन में रखने में किनका श्रधिक हाथ है। शत्र श्रादमी को बाँध नहीं सकता श्रीर न उदासीन व्यक्ति ही। सबसे कडा बंधन होता है स्नेह का. श्रीर स्नेह में यदि निरीहता सम्मिलित हो जाती है, तो वह श्रीर भी मजबूत हो जाता है। धुमक्कड़ों के तजर्बे से मालूम है, कि यदि वह अपनी मां के स्नेह और श्राँसश्रों की चिन्ता करते. तो उनमें से एक भी घर से बाहर नहीं निकल सकता था। १४-२० वर्ष की श्राय के तरुश-जन के सामने ऐसी युक्तियां दी जाती हैं. जो देखने में श्रकाट्य-सी मालूम होती हैं-''तुम कैसे कठोर-हृदय हो ? माता के हृदय की श्रोर नहीं देखते ? उसकी सारी श्राशाएं तम्ही पर केन्द्रित हैं। जिसने नौ महीने कोख में रखा, श्रपने गीखे में रह तुम्हें सुखे में सुलाया, वह माँ तुम्हारे चले जाने पर रो-रो के अन्धी हो जायगी। तम ही एक उसके श्रवलम्ब हो।" यह तर्क श्रीर उपदेश घुमक्कह के संकल्प तथा उत्साह पर हजारों घड़े पानी ही नहीं डाल देते. बल्कि उससे भी श्रधिक माँ की यहाँ वर्णित श्रवस्था उसके मनको निर्वल कर देती है। मावा का स्नेह बढ़ी श्रच्छी चीज है; श्रच्छी ही नहीं कह सकते हैं, उससे मधुर, सुन्दर श्रीर पवित्र स्नेह श्रीर सम्बंध हो ही नहीं सकता. मां के उपकार सचमुच ही चुकाए नहीं जा सकते। किन्तु उनके चुकाने का यह दंग नहीं है, कि तरुण पुत्र मां के श्रंचले में बैठ जाय, फिर कीख में प्रवेश कर पांच महीने का गर्भ बन जाय। माँ के सारे उपकारों का प्रत्युपकार यही हो सकता है, कि पुत्र श्रपनी मां के नाम को उज्वल करे, श्रपनी उज्वल कृतियों श्रीर कीर्ति से उसका नाम चिरस्थायी करे । घ्रम-

क्कड़ ऐसा कर सकता है। कई माताए अपने यशस्वी घुमक्कड पुत्रों के कारण श्रमर हो गई; घुमक्क इ-राज बुद्ध के "मायादेवी सुत" के नाम ने श्रपनी माता माया को श्रमर किया। सुवर्णाची-पुत्र श्रश्वघोष ने पूर्व भारत से गंधार तक घूमते, अपने कान्य और ज्ञान से लोगों के हृदयों को पुलकित, श्रालोकित करते साकतवासिनी माता सुवर्णाची का नाम श्रमर किया । माताएं चुद्र तथा तुरन्त के स्वार्थ के कारण श्रपने भावी धमक्क पुत्र को नहीं समक पातीं श्रीर चाहती हैं कि वह जन्म-कोठरी में. कम-से-कम उसकी जिन्दगी-भर, बैठा रहे। साधारण श्रशिचित माता ही नहीं, शिचित माताएं भी इस बारे में बहुधा अपने को मूढ़ सिद्ध करती हैं, श्रीर घुमक्कड़ी यज्ञ में बाघा बनती हैं। जो माताएं छछ भी समम्मने की शक्ति नहीं रखतीं, उनके पुत्रों से इतना ही कहना है, कि श्रांख मृदं कर. श्रांख बचा कर घर से निकल पड़ो। पहला घाव पीड़ाप्रद होता है, मां को जरूर दर्द होगा: लेकिन सारे जीवन-भर माताएं रोती नहीं रहतीं। कुछ दिन रो-घोकर श्रपने ही श्रांखों के श्रांस सुख जायगे, नेत्रों पर चढ़ी लाली दूर हो जायगी। श्रगर मां के पास एक से श्रधिक सन्तान हैं, तो वह दर्द श्रीर भी सहा हो जायगा। सचमच जो भावी घुमक्कड़ एकपुत्रा माँ के बेटे नहीं हैं, उनको तो कुछ सोचना ही महीं चाहिए। भला दो श्रमुल तक ही देखने वाली मां को कैसे समभाया जा सकता है ?

शिक्तिता माताएं भी श्रधीर देखी जाती हैं। एक माँ का लड़का मेंद्रिक परीक्ता देकर घर से भाग गया। दो-तीन वर्ष से उसका पता नहीं है। माता यह कहकर मेरी सहानुभूति प्राप्त करना चाहती थी—"हम कितनी श्रच्छी तरह से उन्हें घर में रखती हैं, फिर भी यह लड़के हमें दुःख दे कर भाग जाते हैं!" मैंने घुमक्कड़-पुत्र की माता होने के लिए उन्हें बधाई दी—"पुत्रवती युवती जग सोई, जाकर पुत्र घुमक्कड़ होई। श्रापकी छुत्रझाया से दूर होने पर श्रव वह एक स्वावलम्बा पुरुष की तरह कहीं विचर रहा होगा। श्रापक तीन श्रोर बच्चे हैं। पति-परनी ने दो

की जगह तीन व्यक्ति हमारे देश को दिये हैं। यह एक ही पोड़ी में डेड गुनी जनसंख्या की वृद्धि ! सोचिए सुद-दर-सुर के साथ पोड़ियों तक यदि यही बात रही, तो क्या भारत में पैर रखने का भी ठौर रह जायगा?" मेरे तर्क को सुनकर महिला ने बाहर से तो चोम नहीं प्रकट किया, यह उनकी भलमनसाहत समिभए, लेकिन उनको मेरी बातें अच्छी नहीं लगीं। अशिचिता माता "धुमक्कइ-शास्त्र" को क्या जानेगी ? लेकिन, मुक्ते विश्वास है, शिचित-माताएं इसे पड़कर मुक्ते कोसेंगी, शाप देंगी, नरक और कहां कहां मेजेंगी। मैं उनके सभी शावों और दुर्वचनों को सिरमाथे रखने के लिए तैयार हूँ। मैं चाहता हूँ, इस शास्त्र को पड़कर वर्तमान शताब्दी के अन्त तक कम-से-कम एक करोड़ माताएं अपने लालों से वंचित हो जायं। इसके लिए जो भी पाप हो, प्रभु मसीह की भांति उसको सिर पर उठाकर मैं सुली पर चढ़ने के लिए तैयार हूँ।

माता यदि शिचिता ही नहीं समसदार भी है, तो उसे समसना चाहिए, कि पुत्रको घुटने चलने से पेरों पर चलने तक सिखला देने के बाद वह अपने कर्च व्य कापालन कर लेती है। चिड़ियां अपने बच्चों को अंडे से बाहर कर पंख जमने के समय तक की जिम्मेवार होतो हैं, उसके बाद पिचशावक अपने ही विस्तृत दुनिया की उड़ान करने लगता है। कुछ माताएं समसनी हैं कि १४-१६ वर्ष का बच्चा कैसे अपने पेरों पर खड़ा हो सकता है। उनको यह मालूम नहीं है कि मनुष्य के बच्चे के पास पिचयों की अपेचा और भी अधिक साधन हैं। जाड़ों में साइबेरिया से हमारे यहाँ आई लालसर और कितनी ही दूसरी चिड़ियां अप्रेल में हिमालय की ओर लौटती दिखायी देती हैं। गर्भियों में तिब्बत के सरोवर वाले पहाड़ों पर वे अंडे देती हैं। इन अंडों को खाने का इस शरीर को भी सौमाग्य हुआ है। अंडे बच्चों में परिणत होते हैं। सथाने होने पर कितनी ही बार देखा जाता है, कि नये बच्चे अलग ही जमात बना कर उड़ते हैं। ये बच्चे बिना दखे मार्ग से नेसिंग कु बिद्ध के बल पर गर्मियों में उत्तराखंड में उड़ते बैकाल सरोवर तक पहुंचते हैं, और जब

वहाँ तापमान गिरने लगता है, हिमपात होना चाहता है, तो वह फिर अनदेखे रास्ते अनदेखे देश भारत की ओर उड़ते, रास्ते में ठहरते, यहां पहुंच जाते हैं। स्वावलम्बन ने ही उन्हें यह सारी शक्ति दी है। मनुष्य में परावलम्बी बनने की जो प्रवृत्ति शिचिता माता जागृत करना चाहती हैं, मैं समस्तता हूँ उसकी शिचा बेकार है—

#### "धिक् तां च तं च"

श्रगर वह श्रच्छी माता है, दूरदर्शी माता है, तो उसको मूहमाता न बन सममदार माता बनना चाहिए। जिस लड़के में घुमकड़ी का श्चंकुर दीख पड़े, उसे प्रोत्साहित करना चाहिए। घुमने की रुचि देख कर उसे चमता के अनुसार दो चार सौ रुपये देकर कहना चाहिए-''बेटा, जा, दो-चार महीने सारे भारत की सर कर आ"। मैं सममता है, ऐसा करके वह फायदे में ही रहेगी। यदि उसका लड़का घुमक्कड़ी के योग्य नहीं है, तो वृम-फिरकर श्रपने खूं टे पर श्रा खड़ा हो जायगा, उसकी सूठी प्यास बुक्त जायगी। यदि घुमक्कड़ी का बीज सचमुच ही उसमें है, तो वह ऐसी माता का दर्शन करने से कभी नहीं कतरायगा, क्योंकि वह जानता है कि. उसकी माता कभी बंधन नहीं बनेगी। माता को यह भी सोचना चाहिए, कि तरुणाई में एक महानू उद्देश्य के लिए जिस सन्तान के प्रयाण करने में वह बाधक हो रही है, वही पुत्र बड़ा होने पर पत्नी के घर त्राने तथा कुछ सन्तानों के हो जाने पर. क्या विश्वास हे, माता के प्रति वही भाव रखेगा। सास-बहू का भगड़ा श्रीर पुत्र का बहू के पत्त में होना कितना देखा जाता है ? माता के लिए यही श्रच्छा है कि पुत्र के साध-संकल्प में बाधक नही, पुत्र के लिए यही श्रच्छा है, कि दुराग्रही मूढ़ माता का बिलकुल ख्याल न करके अपने को महान् पथ पर डाल दे।

पिता -- माता के बाद पिता धुम्कड़ी संकल्प के तोड़ने का सबसे अधिक प्रयत्न करते हैं। यदि लड़का छोटा ग्रर्थात् १४-१६ वर्ष से कम का है, तो वह उसे छोटे-मोटे साहस करने पर डंडे के सहारे ठीक करना चाहते हैं । घुमक्कड़ी का श्रक्तर क्या डंडे से पीटकर नष्ट किया ना सकता है ? कभी कोई पिता ताड़ना के बल पर सफल नहीं हुआ, तो भी नये पिता उसी हथियार को इस्तेमाल करते हैं । घुमक्कड़ तरुण के लिए श्रन्छा भी है, क्योंकि वह ऐसे पिता के प्रति श्रपनी सद्भावना को खो बैठता है और आंख बचाकर निकल भागने में सफल होते ही उसे भूल जाता है । लेकिन सभी पिता ऐसे मृद नहीं होते, मृद भी दण्ड का प्रयोग पन्द्रह ही वर्ष तक करते हैं । उन्होंने शायद. नीति-शास्त्र में पढ़ लिया होता है—

> "तालयेत् पंच वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रत्वमाचरेत्।।"

पुत्र के भागने पर खोजने की दौड़-भूप पिता के ऊपर होती है, मां बेचारी तो घर के भीतर ही रोती-धोती रह जाती है। कुछ चिन्ताएँ माता-िवता की समान होती हैं। चाहे श्रीर पुत्र मौजूद हों, तब भी एक पुत्र के भागने पर पिता समसता है, वंश निर्वेश हो जायगा. हमारा नाम नहीं चलेगा। वंश-निर्वेश की बात देखनी है तो कोई भी ब्यक्ति श्रपने गोत्र श्रीर जाति की संख्या गिन के देख ले, संख्या लाखों पर पहुंचेगी । सी-पचास लोगों ने यदि अपना वंश न चला पाया. तो वंश-निर्वंश की बात कहाँ श्राती है ? पुत्र के भाग जाने, संतति बृद्धि न करने पर नाम बुक्त जायगा, यह भली कही। मैंने तो श्रच्छे पढ़े-लिखे लोगों से पूछ कर देखा है, कोई परदादा के पिता का नाम नहीं बतला सकता। जब लोग श्रपनी चौथी पीढी का नाम भूल जाते हैं. तो नाम चलाने की बात मुद-धारणा नहीं तो क्या है ? पुराने जमाने में "अपुत्रस्य गतिनीस्ति" भले ही ठीक रही हो. क्योंकि दो हजार वर्ष पहले हमारे देश में जंगल श्रिधिक थे, श्राबादी कम थी, जंगल में हिंसा पशु भरे हुए थे। उस समय मनुष्यों की कोशिश यही होती थी, कि हम बहुत हो जायं. संख्या-बल से शत्रुश्रों को दबा सकें, श्रधिक भोग-सामग्री उपजा सकें 🖡 लेकिन श्राज संख्या-बल देश में इतना है कि श्रीर श्रधिक बढने पर

हमारे लिए वह काल होने जा रहा है। सोचिए, १६४६ में हमारे यहाँ के लोगों को रूखा-सूखा खाना देने के लिए भी ४० लाख टन ग्रनाज बाहर से मंगाने की आवश्यकता है। अभी तक तो लड़ाई के वक्त जमा हो गए पौंड श्रीर कुछ इधर-उधर करके पैसा दे श्रन्त खरीदते-मंगाते रहे, लेकिन अब यदि अनाज की उपज देश में नहीं बढ़ाते, तो पैसे के श्रभाव में बाहर से श्रन्न नहीं श्रायगा, फिर हम लाखों की संख्या में छत्तों की मौत मरेंगे। एक तरफ यह भारी जनसंख्या परेशानी का कारण है, अपर से हर साल पचास लाख मुंह त्रौर बढ़ते-सुद-पर-सुद के साथ बढ़ते—जा रहे हैं। इस समय तो कहना चाहिए—"सपु-त्रस्य गतिर्नास्ति"। त्राज जितने नर-नारी नया मुंह लागे से हाथ खींचते हैं, वह सभी परम पुरुष के भागी हैं। पुरुष पर विश्वास न हो तो श्रद्धा-सग्मान के भागी हैं। वह देश का भार उतारते हैं। हमें श्राशा है, समभदार पिता पुत्रोत्पत्ति करके पितुत्रम्या से उन्हाम होने की कोशिश नहीं करें गे। उन्हें पिंडदान के बिना नरक में जाने की चिन्ता नहीं करनी चाहिए, वयोंकि स्वर्ग-नरक जिस सुमेरु-पर्वत के शिखर श्रौर पाताल में थे, श्राज के भूगोल ने उस भूगोल ही को सूठा साबित कर दिया है। उनको यदि यश और नाम का ख्याल है, तो हो सकता है उनका धुमकड़ पुत्र उसे देने में समर्थ हो। पिता का प्रेम और उसके प्रति श्रद्धा सदा उनके पास रहने से ही नहीं होती. बल्कि सदा पिता के साथ रहने पर तो पिता-पुत्र का मधुर संबंध फीका होते-होते कितनी ही बार कद रूप धारण कर लेता है। पिता के लिए यही अच्छा है कि पत्र के संकल्प में बाधक न हो, और न बढ़ापे की बड़ी-बड़ी आशाओं के विफल होने के ख्याल से हाय-तोबा करे। श्राखिर तरुण एत्र भी मर जाते हैं, तब पिता को कैसे सहारा मिलता है ? महान् लच्य को लेकर चलने वाले पुत्र को दुराप्रही पिता की कोई पर्वाह नहीं करनी चाहिए श्रौर सब छोड़कर घर से भाग जाना चाहिए।

घुमक्कड़ी के पथ पर पैर रखने वालों के सामने का जंजाल इतके

तक ही सीमित नहीं है। शारदा-कानून के बनने पर भी उसे ताक पर रखकर लोगों ने अपने बच्चों का ब्याह किया है। कभी-कभी ऐसा भी देखने में आयगा. कि १४-१६ वर्ष का घुमक्कड़ जब अपने पथ पर पंर रखना चाहता है. तो उसके पैरों में विसी लड़की की बेड़ी बांघ रखी गई होती है। ऐपी गेरकानूनी बेड़ो को तोड़ फेंकने का वरेक की श्रिधिकार है। फिर लोगों का कहना बकवास है—"तुम्हारे चले जाने पर स्त्री क्या करेगी ?" हमारे नये संदिधान सें २१ वर्ष के बाद श्रादमी को मत देने का अधिकार माना गया है, अर्थात २३ वर्ष से पहले तक श्रपने भले-बुरे की वात वह नहीं समक्तता, न श्रपनी जिम्मेयारी को ठीक से पहचान सकता है। जब यह बात है, तो २१ साल से पहले ंतरुण या तरुणी पर उसके ब्याह की जिम्मेवारी नहीं होती। ऐसे ब्याह को न्याय और बुद्धि गैरकानुनी मानती है। तरुण या तरुणी को ऐसे बंधन की जरा भी पर्वाह नहीं करनी चाहिए। यह कहने पर फिर कहा जायगा-"जिम्मेवारी न सही, लेकिन श्रव तो वह तम्हारे साथ बंध .गई है, तुम्हारे छोड़ने पर किस घाट लगेगी ?" यह फंदा भारी है, यहां मस्तिष्क से नहीं दिल से अपील की जा रही है। दया दिखलाने के लिए मक्खी की तरह गृह पर बैठकर सदा के लिए पंखों को कटवा दो । दुनिया में दुःख है, चिन्ताएं हैं, उन्हें जह से न काट कर पत्तों में पानी डाल वृत्त को हरा नहीं किया जा सकता । यदि सयानों ने जिम्मे-वारी नहीं सममी और एक अबोध व्यक्ति को फंदे में फंसा दिया, तो यह आशा रखनी कहां तक उचित है, कि शिकार फंदे को उसी तरह पैर में डाले पड़ा रहेगा। घुमक्छड़ यदि ऐसी मिथ्या परिणीता को छोड़ता है, तो वह घर श्रीर संपत्ति को तो कंधे पर उठाये नहीं ले जाता। ्रिकसने श्रपनी लड़की दी है, उसने पहले व्यक्ति का नहीं, घर का ख्याल करके ही ब्याह किया था। घर वहां मौजूद है, रहे वहां पर। यदि वह सममती है, कि उस पर अन्याय हुआ है, तो समाज से बदला छेती; वह अपना रास्ता लेने के लिए स्वतन्त्र है। ऐसे समय पुराबे समय में

विवाह-विच्छेद का नियम था, पित के गुम होने के तीन वर्ष बाद स्त्री फिर मे विवाह कर सकती थी, श्राज भी सत्तर सैकड़ा हिन्दू करते हैं। हिन्दू-फोड-बिख में यह बात रखी गई है, जिस पर सारे पुरान-पन्थो हाय-तोबा मचा रहे हैं। श्रच्छी बात है, विवाह-विच्छेद न माना जाय, घर में ही बैठा रखी। करोड़ों की संख्या में वयस्क विधवाएं मौजूद ही है, यदि घुमक्कड़ों के कारण कुछ हजार श्रीर बढ़ जाती हैं, तो कौनसा श्रासमान हुट जायना ? बिल्क उससे तो कहना होगा, कि विधवा के रूप में या परिवित्त की स्त्री के रूप में जितनी ही श्रीक स्त्रियां सन्तान- चृद्धि रोकें, उतना ही देश का कल्याण है। घुमक्कड़ होश या बेहोश किसी श्रवस्था में भी ब्याड़ी पत्नी को छोड़ जाता है, तो उससे राष्ट्रीय हिं से काई हानि नहीं विल्क लाभ है।

पःनी से प्रेम रहने पर दुविधा में पड़े घुमक्द्रड़ तरुण के मन में ल्याल था सकता है - अखंड ब्रह्मचर्य के द्वारा सूर्यमंडल वेधकर ब्रह्म-लोक जीतने का मेरा मंसवा नहीं, फिर ऐसी विया पत्नो को छोड़ने से क्या फायदा ? इसका अर्थ हुआ-- बोइने में फायदा होगा। विशेष श्रवस्था में चतुष्पाद होना-स्त्री-पुरुष का साथ रहना-धुमक्कड़ी में भारी बाघा नहीं उरस्थित करता, लेकिन मुश्किल है कि श्राप चतुष्पाद तक ही ग्रपने को सीमित नहीं रख सकते चतुष्याद से, षटपद, ग्रष्टा-पद श्रीर बहुपद तक पहुँच कर रहेंगे। हाँ, यदि घुमक्कड़ की पत्नी भी सौभाग्य से उन्हीं भावनात्रों को रखती है, दोनों पुत्रेषणा से विरत हैं, तो मैं कहंगा-"'कोई पर्वाह नहीं, एक न शुद, दो शुद ।" लेकिन श्रव एक की जगह दो का बोक्ता होगा। साथ रहने पर भी दोनों को श्रपने पैरों पर चलना होगा, न कि एक दूसरे के कंधे पर। साथ ही यह भी निश्चय कर रखना होगा, कि यात्रा में श्रागे जाने पर कहीं यदि एक ने इसरे के अग्रसर होते में बाधा डाली तो-"मन माने तो मेला. नहीं तो सबसे भला श्रकेला।" लेकिन ऐसा बहुत कम होगा, जब कि धुमक्कड होने योग्य व्यक्ति चतुष्पाद भी हो।

बंधु-बांधवों के स्नेद-बंधन के बारे में भी वही बात है। हजारों तरह की जिम्मेवारियों के बारे में इतना ही समम लेना चाहिए, कि धुमक्कइ-पथ सबसे परे, सबसे ऊपर हैं। इसीलिए—

"निस्त्रैगुर्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः, "को फिर यहाँ दुहराना होगा।

बाहरी जंजालों के अतिरिक्त एक भीतरी भारी जंजाल है — मन की निर्वेतता। आरम्भ में घुमक्कड़ी पथ पर चलने की इच्छा रखनेवाले को अनजान रास्ता होने से कुछ भय लगता है। आस्तिक होने पर तो यह भी मन में आता है—

"का चिन्ता मम जीवने यदि हरिविश्वम्मरो गीयते।"(विश्व का भरण करनेवाला मौजूद है, तो जीवन की क्या चिन्ता ?) कितने ही घुमक्कड़ों ने विश्वम्भर के बल पर श्रंधेरे में छुलांग मारी, लेकिन मेधावी श्रौर प्रथम श्रेणी के तरुणों में ऐसे कितने ही होंगे, जो विश्वंभर पर श्रंधा-धुंध विश्वास नहीं रखते। तो भी में श्रपने श्रनुभव से कह सकता हूं, कि श्रंधेरे में छुलांग मारने से जरा भी भय नहीं खाना चाहिए। श्रादमी हर रोज ऐसी छुलांग मार रहा है। दिल्ली श्रीर कल-कत्ता की सड़कों पर कितने श्रादमी हर साल मोटर श्रीर ट्राम के नीचे मरते हैं? उसे देखकर कहना ही होगा, कि श्रपने घर से सड़क पर निकलना श्रंधेरे में कूदना ही है। घर के भीतर ही क्या ठिकाना है? भूकंप में हजारों बिलदान घर की छुतें श्रीर दीवारें लेती हैं। रेल चढ़ने वाले रेल-दुर्घटनाश्रों के कारण क्या यात्रा करना छोड़ देते हैं?

उस दिन सिलीगोड़ी से कलकत्ता विमान द्वारा जाने की बात सुन कर मेरे साथ मोटर में यात्रा करते सज्जन ने कहा—''मेरी भी इच्छा तो करती है किन्तु डर लगता है।'' मैंने कहा—''डर काहे का? विमान से गिरनेवाले योगी की मौत मरते हैं, कोई श्रंग-भंग होकर जीने के लिए नहीं बचता, श्रीर मृत्यु बात-की-बात में हो जाती है।'' मेरे साथी योगी की मृत्यु के लिए तैयार नहीं थे। फिर मैंने बतलाया - "क्या सभी विमान गिरने से मर जाते हैं ? मरने वालों की संख्या बहुत कम,शायद एक लाख में एक,होती है। जब एक लाख में एक को ही मरने की नौबत आती है, तो आप ११११ को छोड़ क्यों एक के साथ रहना चाहते हैं ?" बात काम कर गई त्रीर बागडोगरा के श्रड़ से हम दोनों एक ही साथ उड़कर पौने दो घंटे में कलकत्ता पहुँच गए। विमान पर बगल की खिड़की से दुनिया देखने पर संतोष न कर उन्हों-ने यह भी कोशिश की, कि वैमानिक के पास जाकर देखा जाय। विमान में चढ़ने के बाद उनका भय न जाने कहाँ चला गया ? इसी तरह घ्रम-काड़ी के पथ पर पैर रखने से पहले दिल का अय श्रन्भवहीनता के कारण होता है। घर छोड़कर भागनेवाले लाखों में एक सुश्किल से एक ऐसा मिलेगा, जिसे भोजन के बिना मरना पड़ा हो। कभी कष्ट भी हो जाता है, "परदेश कलेश नरेशह को," किन्तु वह तो घुमकाड़ी रसोई में नमक का काम देता है। घुमकड़ को यह समक्ष लेना चाहिए, कि उसका रास्ता चाहे फुलों का न हो, श्रीर फुल का रास्ता भी क्या कोई रास्ता है, किन्तु उसे अवलम्ब देने वाले हाथ हर जगह मौजूद हैं। ये हाथ विश्वंभर के नहीं मानवता के हाथ हैं। मानव की श्राजकल की स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियों को देखकर लोग निराशावाद का प्रचार करने लगे हैं, लेकिन यह मानव की मानवता ही है, जो विश्वंभर बनकर श्रपरि-चित श्रवनबी परदेशी की सहायता करने को तैयार हो जाती है। बल्कि श्रादमी जितना ही अधिक अपरिचित होता है, उसके प्रति उतनी ही श्रिधिक सहानुभूति होती है। यदि भाषा नहीं समसता, तो वहाँ के श्रादमी उसकी हर तरह से सहायता करना श्रपना कर्चेंग्य समझने लगते हैं। सचमूच हमारी यह भूल है, यदि हम अपने जीवन को अत्यन्त भंगुर समक्त लेते हैं। मनुष्य का जीवन सबसे श्रधिक दुर्मर है। समुद्र में पोत्रसम्न होने पर टूटे फलक को लेकर लोग बच जाते हैं, कितनों की सहायता के लिए पीत पहुँच जाते हैं। घोर जंगल में भी मनुष्य की सहायता के लिए अपनी बुद्धि के अतिरिक्त भी दूसरे हाथ आ पहुँचते हैं। वस्तुतः मानवता जितनी उन्नत हुई है, उसके कारण मनुष्य के लिए प्राण-संकट की नौबत मुश्किल से श्राती है। श्राप श्रपना शहर छोड़िए, हजारों शहर श्रापको श्रपनाने को तैयार मिलेंगे। श्राप श्रपना गाँव छोड़िए, हजारों गाँव स्वागत के लिए तत्पर मिलेंगे। एक मित्र श्रौर बंधु की जगह हजारों बंधु-बांधव श्रापके श्राने की प्रतीचा कर रहे हैं। श्राप एकाकी नहीं है। यहाँ फिर मैं हजार श्रसत्य श्रौर दो चार सत्य बोलने वाली गीता के श्लोक को उद्धत करूंगा—

"त्र्रं हृद्य-दौबंल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ एर्न्तप"। तुम श्रपने हृद्य की दुर्बलता को छोड़ो, फिर दुनिया को विजय कर सकते हो, उसके किसी भी भाग में जा सकते हो, बिना पैसा-कौड़ी के जा सकते हो; केवल साहस की श्रावश्यकता है, बाहर निकलने की श्रावश्यकता है श्रोर वीर की तरह मृत्यु पर हंसने की श्रावश्यकता है। मृत्यु ही श्रा गई तो कौन बड़ी बात हो गई? वह कहीं भी श्रा सकती थी। मनुष्य को कभी-कभी कष्ट का भी सामना करना पड़ता है, लेकिन जो सिंह का शिकार करने चला है, श्रगर वह दरता रहे, तो उसे श्रागे बढ़ने की क्या श्रावश्यकता थी? यदि भावी श्रमकड़ श्रायु में श्रीर श्रनुभव में भी कम हैं, तो वह पहले छोटी-छोटी उड़ान कर सकता है। नये पंख वाले बच्चे छोटी ही उड़ान करते हैं।

श्रारंभिक उड़ानों में, मैं नहीं कहूंगा, कि यदि कुछ पैसा घर से मिल सकता हो, तो वैराग्य के मद में चूर हो उसे काक-विष्टा समम्भ-कर छोड़ कर चल दें। गांठ का पैसा श्रपना महत्व रखता है, इसीलिए वह किसी तरह श्रगर घर में से मिल जाय, तो कुछ ले लेने में हरल नहीं है। पिता-माता का सौ-पचास रूपया ले लेना किसी धर्मशास्त्र में चोरी नहीं कही जायेगी, श्रौर होशियार तरुण कितनी ही सावधानी से रखे पैसे में से कुछ प्राप्त कर ही लेते हैं। श्रालिर जो सारी संपत्ति से स्याग-पत्र दे रहा है उसके लिए उसमें से थोड़ा-सा ले लेना कीनसे श्रपराघ की बात है? लेकिन यह समम्म लेना चाहिए, कि घर के

#### जंजाल तोडो

पेसे के बलपर प्रथम या त्सरी श्रोणी का घुमकक नहीं बना जाय हता। घुमकक को जेव पर नहीं, श्रपनी त्रुद्धि, बाहु श्रीर साहस्य का भरीया रखना चाहिए। घर का पेसा कितने दिनों तक चलेगा १ श्रम्य में तो फिर श्रपनी बुद्धि श्रीर बल पर भरोमा रखना होगा।

### विद्या और वय

यदि सारा भारत घर-बार छोड़कर घुमक्फड़ हो जाय, तो भी चिंता की बात नहीं है। लेकिन धुमक्कडी एक सम्मानित नाम और पद है। उसमें, विशेष कर प्रथम श्रीणों के घुम कहों में सभी नरह के ऐरे-गैरे पंच-कल्याणी नहीं शामिल किये जा सकते । हमारे कितने ही पाठक पहले के अध्यायों को पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए होंगे और सोचते होंगे--- ''चलो पढ़ने-लिखने से छुट्टी मिली। बस कुछ नहीं करना है, निकल चलें, फिर दुनिया में कोई रास्ता निकल ही आयगा।" सुके संदेह है कि इतने हल्के दिल से घुमक्कड्-पथ पर जो आरूढ़ होंगे, वह न घर के होंगे न घाट के, न किसी उच्चादर्श के पालन में समर्थ होंगे। किसी योग्य पद के लिए कुछ साधनों की श्रावश्यकता होती है। मैं यह बतला खुका हैं, कि घुमक्कड़-पथ पर चलने के लिए बालक भी श्रधिकारी हो सकता है. नवतरुणों श्रीर तरुणियों की तो बात ही क्या ? लेकिन हरेक बालक का ऐसा प्रयास सफलता को कोई गारंटी नहीं रखता। ब्रमक्कड़ की समाज पर भार बनकर नहीं रहना है। उसे त्राशा होगी कि समाज श्रीर विश्व के हरेक देश के लोग उसकी सहायता करेंगे, लेकिन उसका काम श्राराम से भिखमंगी करना नहीं है। उसे दुनिया से जितना खेना है, उससे सौ गुना त्राधिक देना है। जो इस दृष्टि से घर छोड़ता है. वहीं सफल और यशस्वी धुमक्कड़ बन सकता है। हां ठीक है, धुमक्कडो का बीज श्रारम्भ में भी बोया जा सकता है। इस पुस्तक को पढ़ते-सम-भाने वाले बालक-बालिकाएं बारह वर्ष से कम के तो शायद ही हो

सकते हैं। हमारे बारह-तेरह साल के पाठक इस शास्त्र को खूब ध्यान से पढ़ें, संकल्प पक्का करें, लेकिन उसी श्रवस्था में यदि घर छोड़ने के लोभ का संवरण कर सकें, तो बहुत श्रच्छा होगा। वह इससे घाटे में नहीं रहेंगे।

मेरे छोटे पाठक उपरोक्त पंक्तियों को पढ़कर मुक्त पर सदेह करने लगेंगे और कहेंगे कि मैं उनके माता-पिता का गुप्तचर बन गया हैं श्रीर उनकी उत्सुकता को दबाकर पीछे खींचना चाहता हूँ। इसके बारे में में यही कहूंगा, कि यह मेरे ऊपर श्रन्याय ही नहीं है, बल्कि उनके लिए भी हितकर नहीं है। मैं नौ साल से अधिक का नहीं था जब श्रपने गांच से पहले-पहल बनारस पहुंचा था। मुक्ते अंगुली पकड़कर मेरे चचा गगा ले जाते थे। मैं इसे अपमान समस्ता था और खल-कर अकेले बनारस के कुछ भागों को देखना और अपने मन की पस्तकें खरीदना चाहताथा। मैंने एक दिन श्रांख बचाकर अपना मंस्रवा पूरा करना चाहा, दो या तान मील का चक्कर लगाया। नौ वर्ष के बालक का एक बहुत होटे गांव से श्राकर एकदम बनारस की गलियों में वूमना भय की बात थी, इसमें संदेह नहीं, लेकिन सुभे उस समय नहीं मालूम था, कि युमक्कड़ी का अन्तर्हित बीज इस रूप में अपने प्रथम प्राकट्य को दिखला रहा है। अगली उडान जो बडी उडानों में प्रथम थी. चौदह वर्ष में हुई, यद्यपि अनन्य रूप से घुमक्कड् धर्म की सेवा का सौभाग्य सुके १६ वर्ष की उन्न से मिला। मैं अपने पाठकों को मना नहीं करता, यदि वह मेरा अनुकरण करें: किन्तु मैं अपने तजर्बे से उन्हें वंचित नहीं करना चाहता। क्रब बातें यदि पहले ही ठीक करली जायं. तो आदमी के जीवन के बारह वर्ष का काम दो बरस में हो सकता है। में यह नहीं कहता कि दो वर्ष के काम के लिए बारह वर्ष घुमना बिलकुल बेकार है, किसी-किसी के लिए उसका भी महत्व हो सकता है: लेकिन सभी बातों पर विचार करने पर ठीक यही मालूम पड़ता है, कि धुमक्कड को संकल्प तो किसी आयु में पक्का कर लेना चाहिए, समय- समय पर सामने श्राते बंधनों को काटते रहना चाहिए, किन्तु पूरी तैयारी के बाद ही घुमक्कड़ बनने के लिए निकल पहना चाहिए। इसका श्रथं यह है कि मन को पहले रंग लेना चाहिए, शरीर पर रंग चढ़ाने में यदि थोड़ी देर हो तो उससे घबड़ाना नहीं चाहिए। टीक है, मैं ऐसी भी सलाह नहीं देता, जैसी कि ग्रुरादाबाद के एक सेठ की योजना में थी। उनकी बड़ी श्राराम की जिन्दगी थी, गिमयों में खस की टटी श्रोर पंखे के नीचे दुनिया का ताप क्या मालूम हो सकता था। लेकिन देखा-देखी 'योग' करने की साध लग गई थी। वह चाइते थे कि निकलकर हुनिया में विचरें। उन्होंने दस दित्याई नारियल के कमंडल भी मंगवा लिये थे। कहते थे—धारे-धीरे जब दस श्रादमी यहां श्रा जायगे, तब हम बाहर निकलोंगे। न जाने कितने सालों के बाद में उन्हों मिला था। मेरे में उतना धेर्य नहीं था कि बाकी श्राठ श्रादमियों के श्राने की वितीचा करता। घुमक्कड़ की श्रधीरता को मैं पसन्द करता हूं। यह श्रधीरता ऐसी शक्ति है, जो मजवूत-से मजबूत बंबनों को काटने में सहायक होती है।

पाठक कहेंगे, तब हमें रोकने की क्या श्रावश्यकता ? क्यों नहीं—
"यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रश्नजेत्" (जिस दिन ही मन उचटे, उसी
दिन निकल पड़ना चाहिए)। इसके उत्तर में मैं कहूंगा—यदि श्राप
तीसरी-चौथी-पांचवीं-छुठीं श्रेणी के ही घुमक्कड़ बनना चाहते हैं, तो
छुशी से ऐसा कर सकते हैं। लेकिन मैं चाहता हूं कि श्राप प्रथम श्रोर
दितीय श्रेणी के घुमक्कड़ बनें, इसलिए मन को रंगका निकलने से पहले
थोड़ी तैयारी कर लें। घुमक्कड़ी जीवन के लिए पहला कहम है, श्रपने
भावी जीवन के संबंध में पक्का संकल्पकर डालना। इसको जितना ही
जल्दी कर लें, उतना ही श्रद्धा। बारह से चौदह साल तक की उश्र
तक में ऐसा संकत्य श्रवश्य हो जाना चाहिए। बारह से पहले बहुन
कम को श्रपेशित ज्ञान श्रीर श्रनुभव होता है, जिसके बल पर कि यह
श्रपने प्रोग्राम को पक्का कर सकें। लेकिन बारह श्रीर चौदह का समय

ऐसा है जिसमें बुद्धि रखनेवाले बालक एक निरुचय पर पहुँच सकते हैं। प्रथम श्रोणी के घुमक्कड़ के लिए मेधावी होना ब्रावश्यक है। मैं चाहता हूँ, घुमक्कड़-पथ के श्रनुयायी प्रथम श्रीणी के मस्तिष्क वाले तरुण और तरुणियां वनें। वैसे श्रमली श्रीणियों के घुमक्कड़ों से भी समाज को फायदा है, यह मैं बतला चुका हूं। १२-१४ की श्रायु में मानसिक दीचा लेकर मामूली सेर-सपाटे के बहाने छुछ इधर-उधर छोटी-मोटी छुदान करते रहना चाहिए।

कौन समय दं जबिक तरुण को महाभिनिष्यम्भण करना चाहिए ?
मैं समस्ता हूँ इसके लिए कम से-कम श्रायु १६-१८ की होनी चाहिए
श्रीर कम से कम पढ़ने की योग्यता मेट्रिक या उसके श्रामपास वाली
दूसरी तरह की पढ़ाई। मेट्रिक से मेरा मतलब खास परीचा से नहीं है,
बिक उतना पढ़ने में जितना साधारण साहित्य, इतिहाल, भूगोल श्रीर
गिणित का ज्ञान होता है, युक्त मही के लिए वह श्रुएपतम श्रावश्यक
ज्ञान है। मैं चाहता हूँ कि एक बार चल देने पर फिर श्रादमी को बीच
में मामूली ज्ञान के श्रांन की फिक में हवना नहीं पड़े।

घर छोड़ने के लिए कम-से-कम आयु १६-१८ हैं, अधिक सेअधिक आयु में २३-२४ मानता हूँ। २४ तक घर से निकल जाना चाहिए,
नहीं तो आदमी पर बहुत-से दुसंस्कार पड़ने लगते हैं, उसकी दुदि
मिलन होने लगती हैं, मन संशीर्ण पड़ने लगता है, शरीर को पिश्रिमी
बनाने का मौदा हाथ से निकलने लगता है, भाषाए सीकने में सबसे
उपयोगी आयु के कितने ही बहुमूल्य वर्ष हाथ से चले जाते हैं। इस
तरह १६ से २४ साल की आयु वह आयु है जब कि महाभिनिष्कमण
करना चाहिए। इनमें दोनों के बीच के आठ वर्ष की आधी अर्थात्
२० वर्ष की आयु को आदर्श माना जा सकता है। इसका अर्थ यह है
कि अल्पतम अवसर के बाद भी आदमी चार वर्ष और अपने पर जोर
डालकर अपनी शिका में लगा रहे। यद रखना चाहिए, प्रथम अर्था का घुमक्वड़ कवि, लेखक या कलाकार के रूप में संसार के सामने

श्राता है। कवि, लेखक श्रीर कलाकार यदि ज्ञान में दुटपुं िये हों, तो उनकी कृतियों में गम्भीरता नहीं श्रा सकती। श्रलपश्रुत व्यक्ति देखी जानेवाली चीजों की गहराई में नहीं उतर सकते। पहले दह संकल्प कर लेने पर फिर जागे की पढ़ाई जारी रखते जादमी को यह भी पता लगाना चाहिए. कि उसकी स्वामाविक रुचि किस तरफ अधिक है. फिर उसीके श्रतुकृत पाञ्च-विषय चुनना चाहिए। मैद्रिक की शिचा मैंने कम-से-कम बतलाई श्रीर श्रव उसने चार साल श्रीर जोड़ रहा हूँ, इससे पाठक समम गए होंगे कि मैं उन्हें विश्वविद्यालय का स्नातक (थी. ए.) हो जाने का परामर्श दे रहा हूं । यह अनुमान गलत नहीं है। मेरे पाठक फिर मुक्तमे नाराज हुए बिना नहीं ॰ हेंगे। वह धीरज खोने लगेंगे। लेकिन उनके इस च्याक रोष से मैं सच्ची श्रीर उनके हित की बात बताने से बाज नहीं श्रा सकता। जिस व्यक्ति में महान् घुमक्कड़ का अंकुर है, उसे चाहे छुछ साल भटकना ही पड़े, किंतु किसी श्रायु में भी निकलकर वह रास्ता बना लेगा। इसलिए मैं अधीर तरुणों के रास्ते में रुकावट डालना नहीं चाइता । लेकिन ४० साल की धुमक़ड़ी के तज़र्बे ने मुक्ते बतलाया है, कि यदि तैयारी के समय को थोड़ा पहले ही बढ़ा दिया जाय, तो श्रादमी श्रागे बड़े लाभ में रहता है। मैंने पुस्तकें लिखते वन्त सदा श्रपनी भोगी कठिनाइयों का स्मरण रखा। सुके १६१६ से १६३२ तक के सोलह वर्ष लगाकर जितना बौद धर्म का ज्ञान मिला, मैंने एक दर्जन प्रन्थों को जिखकर ऐसा रास्ता बना दिया है, कि दूसरे सोलह वर्षों में प्राप्त ज्ञान की तीन-चार वर्ष में श्राजित कर सकते हैं। यदि यह रास्ता पहले तैयार रहता, तो मुक्ते कितना लाभ हुआ होता ? जैसे यहां यह बिद्या की बात है, वैसे ही घुमक द़ी के साधनों के संग्रह में बिना तज बें वाले प्रादमी के बहुत-से वर्ष लग जाते हैं। श्रापने १२-१४ वर्ष की श्रायु में दद सकलप कर लिया, सोलह वर्ष की आयु में मैट्रिक तक पढ़कर आवश्यक साधारण विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। श्राप दुनिया के नक्शे से

वाकिफ हैं, भूगोल का ज्ञान रखते हैं, दुनिया के देशों से बिलकुला श्रपिरिचित नहीं हैं।

जब श्रापने संकल्प कर लिया है, तो अगले चार-पांच साल में श्रपने श्रासपास के पुस्तकालयों या श्रपने स्कूल की लायब री में जितनी भी यात्रा-पुस्तकें श्रोर जीवनियाँ मिलती हों, उन्हें ज़रूर पढ़ा होगा। श्रच्छे उपन्यास-कहानी घुमक्कड़ की प्रिय वस्तु हैं, लेकिन उसकी सबसे प्रिय वस्तु है यात्राएं। श्राजकल के भारतीय यात्रियों की पुस्तकें श्रापने श्रवश्य पढ़ी होंगी, फिर पुराने-नये सभी देशी-विदेशी यात्रियों की यात्राएं श्रापके लिए बहुत रुचिकर प्रतीत हुई होंगी। प्राचीन श्रोर श्राधुनिक देशी-विदेशी सभी घुमक्कड़ एक परिवार के सगे भाई हैं। उनके ज्ञान को पहले श्रजित कर लेना तरुण के लिए बहुत बढ़ा संबल है। मैंद्रिक होते-होते श्रादमी को यात्रा-सम्बन्धी डंद-दो सौ पुस्तकें तो श्रवश्य पढ़ डालनी चाहिए।

घुमक्कड़ को भिन्न-भिन्न भाषाओं का ज्ञान अपनी यात्रा में प्राप्त करना पड़ता है। कुछ भाषाएं तो १६ वर्ष की उस्र तक भी पढ़ी जा सकती हैं। हिन्दी वालों को बंगला और गुजराती का पढ़ना दो महीने की बात है। श्रंग्रे जी सभी हमारे विद्यालयों में श्रानिवार्थ रूप से पढ़ाई जा रही है, इसलिए श्रंग्रे जी पुस्तकें पढ़ने का सुभीता भी मौजूद है। लेकिन दस-पन्द्रह वर्ष बाद यह सुभीता नहीं रहेगा, क्योंकि श्रंग्रे जी-संरक्षक श्वेत-केश वृद्ध नेता तब तक परलोक सिधार गए होंगे। लेकिन उस समय भी धुमक्कड़ श्रपने को श्रंग्रे जी या दूसरी भाषा पढ़ने से मुक्त नहीं रख सकता। पृथ्वी के चारों कोनों में भाषा की दिक्कत के बिना धूमने के लिए श्रंग्रे जी, रूसी, चीनी और फ्रेंच इन चार भाषाओं का कामचलाऊ ज्ञान श्रावश्यक है, नहीं तो जिस भाषा का ज्ञान नहीं रहेगा, उस देश की यात्रा श्रिषक श्रानन्ददायक और शिषापद नहीं हो सकेगी।

मैद्रिक के बाद अपने आगे की तैयारी के लिए चार साल यात्रा

को स्थगित रखकर आदमी को वया करना चाहिए ? घुमक्कड़ के लिए भगोल श्रीर नक्शे का ज्ञान श्रत्यन्त श्रावश्यक है। में द्रिक तक भूगोल श्रांर नक्शे का जो ज्ञान हुआ है, वह पर्याप्त नहीं है। श्रापको नई परानी कोई भी यात्रा पुस्तक को पढ़ते समय नक्शे को देखते रहना चाहिए। केवल नक्शा देखना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि उसमें उन्नतांश श्रीर खिशियर श्रादि का चिन्ह होने पर भी उससे श्रापको ठीक पता नहीं लगेगा कि जाड़ों में वहां की भूमि कैसी रहती होगी। नक्शे में लेनिनग्राह को देखने वाला नहीं समभेगा कि वहां जाडों में तापमान हिमबिन्दु से ४४-४० डिग्री ( -२४,-३० सेंटीग्रेड ) तक गिर जाता है। हिमान्दु से ४४-४० डिग्री नीचे जाने का भी भूगोल की साधा-रण पुस्तकों से श्रनुमान नहीं हो सकता। हमारे पाठक जो हिमालय के ६००० फुट से ऊपर की जगहों में जाड़ों में नहीं गये, हिमबिन्दु का भी श्रनुमान नहीं कर सकते। यदि कुछ मिनट तक श्रपने हाथों में सेर-भर बर्फ का डला रखने की कोशिश करें, तो त्राप उसका कुछ कुछ श्रनुमान कर सकते हैं। लेकिन घुमक्कड़ तरुण को घर से निकलने से पहले भिन्न जलवाय की छोटो-मोटी यात्रा करके देख लेना चाहिए। यदि श्राप जनवरी में शिमला श्रीर नैनीताल को देख श्राये हैं, तो श्राप स्वेन-चङ् या फाहियान की तुषार-देश की यात्राश्रों के वर्णन का साचात्कार कर सकते हैं, तभी श्राप लेनिनग्राड की हिमबिन्दु से ४४-४० डियी नीचे की सदीं का भी कुछ अनुमान कर सकते हैं। इस प्रकार तरुए यह जानकर प्रसन्त होंगे कि मैं तैयारी के समय में भी छोटी-छोटी यात्राओं के करने का जोर सं समर्थन करता है।

भूगोल और इतिहास के साथ-साथ विद्यार्थी श्रव यात्रा-सम्बन्धी दूसरे साहित्य का भी श्रध्ययन कर सकता है। कालेज में श्रध्ययन के समय उसे लेखनी चलाने का भी श्रभ्यास करना चाहिए। यह ऐसी श्रायु है जबिक हरेक जीवट वाले तरुण-तरुणी में कविता करने की स्वामाविक प्रेरणा होता दं, कथा-कहानो का लेखक बनने की मन में

उमंग उठती है। इससे खाभ उठाकर हमारे तरुण को श्रधिक-पे-श्रधिक पुष्ठ काले करने चाहिएं, लेकिन यदि वह अपनी कृतियों को प्रकाश में लाने के लिए उतावला न हो. तो अच्छा है। समय से पहले लेख श्रीर कविता का पत्रों में प्रकाशित हो जाना श्रादमी के हर्ष को तो बढ़ाता है, लेकिन कितनी ही बार यह खतरे की भी चीज़ होती है। कितने ही ऐसे प्रतिभाशाली तरुण देखे गए हैं. जिनका भविष्य समय से पहले ख्याति मिल जाने के कारण खतम हो गया। चार सुन्दर कविताएं बन गईं, फिर ख्याति तो मिलनी ही ठहरी और कवि-सम्मेलनों में बार-बार पढ़ने का आग्रह भी दोना ही ठहरा। आज की पीढ़ो में भी कुछ ऐसे तरुण हैं, जिन्हें जल्दी की प्रसिद्धि ने किसी लायक नहीं रखा। श्रव उनका मन नवसूजन की त्रोर जाता ही नहीं। किसी नये नगर के कवि-सम्मेलन में जाने पर उनकी प्ररानी कविता के ऊपर प्रचंड करतल-ध्वनि होगी ही, फिर मन क्यों एकाय हो नवसूजन में लगेगा ? धुमक्कड को इतनी सस्ती कीर्ति नहीं चाहिए, उसका जीवन तालियों की गुंज के लिए लालायित होने के लिए नहीं है. न उसे दो-चार वर्षी तक सेवा करके पेंशन लेकर बैठना है। घुमक्कड़ी का रोग तपेदिक के रोग से कम नहीं है. वह जीवन के साथ ही जाता है. वहां किसीको श्रव-काश या पेंशन नहीं मिलती।

साहित्य और दूसरी जिन चीज़ों की घुमक्कड़ों को धावरयकता है, उनके बारे में धागे हम और भी कहनेवाले हैं। यहाँ विशेष तौर से हम तरुणों का ध्यान शारीरिक तैयारी की धार धाकृष्ट करना चाहते हैं। घुमक्कड़ का शरीर हिंगेज पान-फूल का नहीं होना चाहिए। जैसे उसका मन और साहस फौलाद की तरह है, उसी तरह शरीर भी फौलाद का होना चाहिए। घुमक्कड़ को पोत, रेल और विमान की यात्रा विजित नहीं है, किन्तु इन्हीं तीनों तक सीमित रखकर कोई प्रथम श्रेणी क्या दूसरी श्रेणी का भी घुमक्कड़ नहीं बन सकता। उसे ऐसे स्थानों की यात्रा करनी पड़ेगी, जहाँ इन यात्रा-साधनों का पता

नहीं होगा। कहीं बैलगाड़ी या खच्चर मिल जायंगे, लेकिन कहीं ऐसे स्थान भी आ सकते हैं, जहाँ घुमक्कड़ को अपना सामान अपनी पीठ पर लादकर चलना पड़ेगा। पीठ पर सामान ढोना एक दिन में सहा नहीं हो सकता। यदि पहले से श्रभ्यास नहीं किया है, तो पंद्रह सेर के बोक्ते को दो मील ले जाते ही श्राप सारी दुनिया को कोसने लगेंगे। इसलिए बीच में जो चार साल का श्रवसर मिला है, उसमें भावी घुम-क्कड को अपने शरीर को कप्टचस ही नहीं परिश्रमचस भी बनाना चाहिए। पीठ पर बोमा लेकर जब-तब दो चार मील का चक्कर मार श्राना चाहिए। शरीर को मजबूत करने के लिए और भी कसरत श्रीर ब्यायाम किये जा सकते हैं, लेकिन घुमक्कड़ को घूम-घूमकर दुश्ती या दंगल नहीं लडना है। मजबूत शरीर स्वस्थ शरीर होता है, इसलिए वह तरह-तरह के व्यायाम से शरीर को मजबूत कर सकता है। लेकिन जो बात सबसे श्रधिक सहायक हो सकती है, वह है मन-सवामन का बोम पीठ पर रख कर दस-पाँच मील जाना श्रौर कुदाल लेकर एक सांस में एक-दो क्यारी खोद डाजना। यह दोनों बातें दो-चार दिन के श्रभ्यास से नहीं हो सकतीं; इनमें कुछ महीने लगते हैं। श्रभ्यास हो जाने पर किसी देश में चले जाने पर अपने शारीरिक-कार्य द्वारा श्रादमी दूसरे के ऊपर भार बनने से बच सकता है। मान लीजिए अपने घुमक्कड़ी-जीवन में श्राप द्रिनीडाड श्रौर गायना निकल गये — इन दोनों स्थानों में लाखों भारतीय जाकर बस गए हैं-वहां से श्राप चिली या इक्वेटर में पहुँच सकते हैं। श्राप चाहे श्रौर कोई हुनर न भी जानते हों, या जानने पर भी वहां उसका महत्व न हो, तो किसी गाँव में पहुंचकर किसी किसान के काम में हाथ बंटा सकते हैं। फिर उस किसान के आप महीने-भर भी मेहमान रहना चाहें, तो वह प्रसन्नता से रखेगा। श्राप उच्च श्रेशी के धुमकद हैं, इसलिए श्रापमें श्रपने शारीरिक काम के लिए वेतन का लालच नहीं होगा। श्राप देश-देश की यात्रा के तजर्बों की बातें बत-लायोंगे, लोगों में घुल-मिलकर उनके खेतों में काम करेंगे। यह ऐसी चीज़ है, जो श्रापको गृहपति का श्रात्मीय बना देगी। यह भी स्मरण रखना चाहिए, कि श्रव दुनिया में शारीरिक श्रम का मूल्य बढ़ता ही जा रहा है। हमारे ही देश में पिछ्नले दस वर्षों के भीतर शरीर से काम करने वालों का वेतन कई गुना बढ़ गया है, यह श्राप किसी भी गांव में जाकर जान सकते हैं। फिर दुनिया का कौनसा देश है, जहां पर जाकर समय-समयपर काम करके श्रमक्कड़ जोवन-यापन का इन्तजाम नहीं कर सकता?

शारीरिक परिश्रम. यही नहीं कि श्रापके लिए जेब में पड़े नोट का काम देता है, बल्कि वह आज ही मिले आदमी को धनिष्ठ बना देता है। मेरे एक मित्र जर्मनी में सत्रह वर्ष रहकर हाल ही में भारत लौटे । वहां दो विश्वविद्यालयों से दो-दो विषयों पर उन्हें डाक्टर की उपाधि मिली, बर्लिन जैसे महानू विश्वविद्यालय में भारतीय दर्शन के मोफेसर रहे । द्वितीय महायुद्ध के बाद पराजित जर्मनी में ऐसी श्रवस्था श्राई जबकि उनकी विद्या किसी काम की नहीं थी। वह एक गांव में जाकर एक किसान के गायों घोड़ों को चराते श्रीर खेतों में काम करते दो साल तक रहे। किसान, उसकी स्त्री, उसकी लड्कियां, सारा घर हमारे मित्र को अपने परिवार का व्यक्ति समस्ता था और चाहता था कि वह वहीं बने रहें। उस किसान को बड़ी प्रसन्नता होती यदि हमारे दोस्त ने उसकी सुवर्णकेशी तरुण कन्या से परिणय करना स्वीकार कर जिया होता। मैं हरेक धुमक्कड होने वाले तरुण से कहंगा, कि यद्यपि स्नेह श्रीर प्रेम बुरी चीज नहीं है, लेकिन जंगम से स्थावर बनना बहत बुरा है। इसलिए इस तरह दिल नहीं दे बैठना चाहिए, कि श्रादमी खुंटे में बंधा बैल बन जाय। श्रस्तु। इससे यह तो साफ ही है कि श्राजकल की द्रनिया में स्वस्थ शरीर के होते शरीर से हर तरह का परिश्रम करने का अभ्यास धुमक्कड के लिए बड़े लाभ की चीज है।

श्रगले चार वर्षों तक यदि तरुण ठहरकर, शिचा में श्रौर लगता है तो वह श्रपने ज्ञान श्रौर शारीरिक योग्यता को श्रागे बढ़ा सकता है। जहां एक ग्रोर उसको यह लाभ हो सकता है, वहां उसे दूसरा लाम है विश्वविद्यालय का स्नातक बन जाना। घुमध्ड, के लिए बी० ए० हो जाना कोई ग्रत्यन्त ग्रावश्यक चीज नहीं है। उसका भाव होने पर यद्यपि बहुत अन्तर नहीं पड़ता, लेकिन अभाव होने पर कभी-कभी धुमकड़ श्रागे चलकर इसे एक कमी समस्ता है श्रीर फिर विविध दशों में पर्यटन करते रहने की जगह वह बी० ए० की डिग्री लेने के लिए बेठना चाहता है। इस एषणा को पहले ही समाप्त करके यदि वह निकलता है. तो श्रागे फिर रुकना नहीं पडता। डिग्री का कहीं-कहीं लाभ भी हो सकता है। इसका एक लाभ यह भी है कि पहले-परल मिलने वाले श्रादमी को यह तो विश्वास हो जाता है कि यह श्रादमी शिच्चित श्रीर संस्कृत है। जो तरुए कालेज में चार साल लगायगा, वहां श्रपने भावी कार्य श्रीर रुचि के श्रनुसार ही विषयों को चुनेगा। फिर पाठ्य पुस्तकों से बाहर भी उसे अपने ज्ञान बढ़ाने का काफी साधन मिख जायगा। इसी समय के भीतर शादमी नृत्य, संगीत, चित्र शादि घुमकह के लिए श्रत्यन्त उपयोगी कलाएं भी सीख जायगा । इस प्रकार चार साल श्रौर रुक जाना घाटे का सौदा नहीं है। बीस या बाईस साल की श्राय में यूनिवर्सिटी की उच्च शिचा को समाप्त करके त्रादमी खुब साधन-सम्पन्न हो जायगा, इसे समक्ताने की श्रावश्यकता नहीं। संच्चेप में हमें इस अध्याय में बतलाना था- वैसे तो होश सम्भालने के बाद किसी समय श्रादमी संकल्प पका कर सकता है, श्रीर घर से भाग भी सकता है: श्रागे उसका ज्ञान श्रौर साहस सहायता करेगा; लेकिन बारह वर्ष की श्रवस्था में दृढ़ संकल्प करके सोलह वर्ष की श्रवस्था तक बाहर जाने के लिए उपयोगी ज्ञान के श्रर्जन कर लेने पर भागना कोई बुरा नहीं है। लेकिन श्रादर्श महाभिनिष्क्रमण तो तभी वहा जा सकता है, जबकि धुमकड़ी के सभी श्रावश्यक विषयों की शिचा हो चुकी हो, श्रीर शारीर भी हर तरह के काम के लिए तैयार हो। २२ या २४ साल की उछ में घर छोड़ने वाला व्यक्ति इस प्रकार ज्ञान-संपत्ति श्रोर शारीरिक श्रम-

संपत्ति दोनों से युक्त होगा। श्रव उसे कहीं निराशा श्रोंर चिन्ता नहीं होगी।

श्रार्थिक कठिनाइयों के कारण घर पर रहकर जिनको श्रध्ययन में कोई प्रगति होने की संभावना नहीं है, उनके लिए तो—

"यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्।"

धुमकड़ी का श्रंकुर किसी देश, जाति या वर्ग में सीमित नहीं रहता। धनाट्य कुल में भी घुमकड़ पैदा हो सकता है, लेकिन तभी जब कि उस देश का जातीय जीवन उन्मख हो। पतनशील जाति में धना-ढ्य होने का मतलब है, उसके व्यक्तियों का सब तरह से पतनोन्मुख होना। तो भी, जैसा कि हमने पहले बतलाया है, घुमक्कड़ी का बीजां-कुर कहीं भी उद्भूत हो सकता है। लेकिन चाहे धनी कुल में पैदा हो या निर्धन कुल में, अथवा मेरी तरह न धनी और न निर्धन कुला में, तो भी घुमकड़ में श्रीर गुणों के श्रतिरिक्त स्वावलम्बन की मात्रा श्रधिक होनी चाहिए। सोने श्रीर चाँदी के कटोरों के साथ पेदा हुश्रा घुमकाड़ी की परीचा में बिलकुल श्रनुत्तीर्ण हो जायगा, यदि उसने श्रपने सोने-चाँदी के भरोसे घुमकङ्चर्या करनी चाही। वस्तुतः संपत्ति श्रीर धन द्यमकड़ी के मार्ग में बाधक हो सकते हैं। धन-संपत्ति को सममा जाता हे, कि वह आदमी की सब जगह गति करा सकती है। लेकिन यह बिलकुल मूठा ख्याल है। धन-संपत्ति रेल, जहाज श्रीर विमान तक पहुंचा सकती है, विलास होटलों, काफी-भवनों तक की सेंर करा सकती है। घुमकड़ दढ़-संकल्पी न हो तो इन स्थानों से उसके मनोबल को चित पहुँच सकती है। इसीलिए पाठकों में यदि कोई घनी तरुण घुम-क्कड़ी-धर्म को प्रहर्ण करना चाहता है, तो उसे श्रपनी उस धन-संपत्ति से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना चाहिए, श्रर्थात् समय-समय पर केवल उतना ही पैसा पाकेट में लेकर घूमना चाहिए, जिसमें भीख मांगने की

नौबत नहीं श्राए श्रौर साथ ही भन्य-होटलों श्रौर पांथराालाश्रों में रहने को स्थान न मिल सके। इसका श्रर्थ यह है कि भिन्न-भिन्न वर्ग में उत्पन्न घुमकड़ों को एक साधारण तल पर श्राना चाहिए।

घुमक्कड़ धर्म किसी जात-पांत को नहीं मानता, न किसी धर्म या वर्ण के आधार पर अवस्थित वर्ग ही की। यह सबसे आवश्यक है कि एक घुमक्कड़ दूसरे को देखकर बिलकुल आस्मीयता अनुभव करने लगे— वस्तुतः घुमक्कड़ी के विकास के उच्चतल की यह कसौटी है। जितने ही उच्च श्रेणी के घुमक्कड़ होंगे, उतना ही वह आपस में बन्धुता अनुभव करेंगे और उनके भीतर मेरा-तेरा का भाव बहुत-कुछ लोप हो जायगा। चीनी घुमक्कड़ फाहियान और स्वेन-चाङ् की यात्राओं को देखने से मालूम होगा, कि वह नये मिले यायावरों के साथ कितना स्नेह का भाव रखते थे। इतिहास के लिए विस्मृत किंतु कठोर साधनाओं के साथ घुमक्कड़ी किये व्यक्तियों का उन्होंने कितना सम्मान और सद्भाव के साथ स्मरण किया है।

घुमक्कड़ी एक रस है, जो काच्य के रस से किसी तरह भी कम नहीं है। किटन मार्गों को तय करने के बाद नये स्थानों में पहुँचने पर हृद्य में जो भावोद्दे के पैदा होता है, वह एक अनुपम चीज है। उसे किवता के रस से हम तुलना कर सकते हैं, और यिद कोई ब्रह्म पर विश्वास रखता हो, तो वह उसे ब्रह्म-रस सममेगा—"रसो वैसः रसंहि लब्ध्वा आनन्दी भवति।'' इतना जरूर कहना होगा कि उस रस का भागी वह व्यक्ति नहीं हो सकता, जो सोने-चाँदी में लिपटा हुआ यात्रा करना चाहता है। सोने-चांदी के बल पर बढ़िया-से-बढ़िया होटलों में टहरने, बढ़िया से-बढ़िया विमानों पर सेर करने वालों को घुमक्कड़ कहना इस महान शब्द के प्रति भारी अन्याय करना है। इसलिए यह समक्तने में किठनाई नहीं हो सकती कि सोने के कटोरे को मुंह में लिये पेंदा होना घुमक्कड़ के लिए तारीफ की बात नहीं है। यह ऐसी बाधा है, जिसको इटाने में काफी परिश्रम की आवश्यकता होती है।

प्रश्न हो सकता है-क्या सभी वस्तुत्रों से विरत हो, सभी चीकों को छोडकर. कुछ भी हाथ में न रख निकल पड्ना ही एकमात्र धुमक्कड का रास्ता है ? जहाँ घुमक्कड़ के लिए संपत्ति बाधक श्रीर हानिकारक है, वहाँ साथ ही घुमक्कड के लिए श्रात्मसम्मान की भी भारी आवश्यकता है। जिसमें श्रात्मसम्मान का भाव नहीं, वह कभी श्रच्छे दर्जे का घुम-क्कड़ नहीं हो सकता। श्रद्धी श्रेणी के घुमक्कड़ का कर्त्तव्य है कि श्रपनी जाति, श्रपने पंथ, श्रपने बंधु-बांघवों पर-जिनमें केवल घुम-क्कड ही शामिल हैं - कोई लांछन नहीं ग्राने दे। यदि घुमक्कड उच्चा-द्शें श्रौर सम्माननीय व्यवहार को कायम रखेगा, तो उससे वर्तमान श्रीर भविष्य के, एक देश श्रीर सारे देशों के घुमक्कड़ों की लाभ पहुँचेगा । इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि हजारों घुमन्कहों में कुछ हुरे निकलेंगे श्रौर उनकी वजह से घुमक्कड्-पंथ कलंकित होगा। हरेक श्रादमी के सामने घुमक्कड़ के श्रसली रूप को रखान भी जा सके तो भी गुणप्राही, संस्कृत, बहुअनु, दूरदर्शी नर-नारियों के हः य में घुम-क्कड़ों के प्रति विशेष त्रादरभाव पैदा करना हरेक घुमक्कड़ का कर्त्तं व्य है। उसे ऋपना ही रास्ता ठीक नहीं रखना है, बल्कि यदि रास्ते में काँट पड़े हों, तो उन्हें हटा देना है. जिसमें भविष्य में श्राने वालों के पैर में वह न चुभें। इन सबका ध्यान वही रख सकता है, जिसमें श्राहम-सम्मान की भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। घुमक्कड़ चापलूसी से वृणा करता है, लेकिन इसका श्रर्थ श्रक्खड़, उजड़ु होना नहीं है, श्रीर न सांस्कृतिक सद्व्यवहार से हाथ घो लेना। वस्तुतः को अपने श्राचरण और स्वभाव को ऐसा बनाना है, जिससे वह दुनिया में किसीको अपने से ऊपर नहीं समसे. लेकिन साथ ही किसीको नीचा भी न समके। समद्शिता घुमक्कड़ का एकमात्र दृष्टिकीया है, श्रात्मी-यता उसके हरेक बर्ताव का सार है।

श्रात्मसम्मान रखने वाले श्रादमी के लिए यह श्रावश्यक है, कि वह भिचुक, भीख मांगने वाला, न बने। भीख न मांगने का यह श्रर्थ नहीं है, कि मिलाजी शे बोद भिलु इस घुमक इ वर्श के अधिकारी नहीं हो सकते। वस्तुतः उस भिलाचर्या का घुमक ड़ो से विरोध नहीं हैं। वहीं भिलाचर्या लुरी है जिसमें आदमी को दीन-हीन बनना पड़ता है, आत्म-सम्मान को खोना पड़ता है। लेकिन ऐसी भिलाचर्या बौद्ध भिलुओं के लिए बौद देशों तक ही सीमित रह सकती है। बाइर के देशों में वह संभव नहीं है। महान् घुमक ड़ बुद ने भिलाचर्या का आत्मसम्मान के साथ जिस तरह सामंजस्य किया है, वह आश्चर्यकर है। बौद देशों में घुमक ड़ी करने वाले भिलु ही उस यात्रा का आनन्द जानते हैं। इसमें संदेह नहीं, बौद देशों के सभी भिलु घुमक ड़ नाम के अधिकारी नहीं होते, प्रथम धेशों के घुमक ड़ों की सख्या ता वहां और भी कम है। फिर भी उनके प्रथम मार्गदर्शक ने जिस तरह का पथ तेयार किया, पथ के चिन्ह निर्मित किये, उस पर घास-भाड़ी अधिक उग आने पर भी वह वहां मोजूद है, और पंथ को आसानी से फिर प्रशस्त किया जा सकता है।

यदि बांद-भिचुओं की बात को छोड़ दें, तो आत्मसम्मान को कायम रखने के लिए घुमक्कड़ को स्वावलम्बी होने में सहायक छुछ बातों की अत्यन्त आवश्यकता है। हम पहले स्वावलम्बन के बारे में बांड़ा कह चुके हैं और आगे और भी कहेंगे, यहाँ भी इसके बारे में छुछ मोटी-मोटी बातें बतल एंगे।

स्वायलस्यन का यह मतलब नहीं, कि श्राहमी श्रपने श्रिक्ति पैसे से विलासपूर्ण जीवन बिताये। ऐसे जीवन का धुमक्कड़ी से ३ और ६ का सम्बन्ध है। स्वावलम्बी होने का यह भी श्रर्थ नहीं है, कि श्राहमी धन कमाकर जुल-पिरवार पोसने लग जाय। कुल-पिरवार श्रीर धुमक्कड़ी-वर्म से क्या सम्बन्ध १ कुल-पिरवार स्थावर व्यक्ति की चीज है, धुमक्कड़ जंगम है, सदा चलने वाला। हो सकता है धुमक्कड़ को श्रपने जीवन में कभी वर्ष-दो-वर्ष एक जगह भी रहना पड़ जाय, लेकिन यह स्वेच्छापूर्वक रहने की सबसे बड़ी श्रवधि है। इससे श्रधिक रहने वाला,

संभव नहीं है, कि अपने बत को पालन कर सके। इस प्रकार स्वावलम्बी होने का यही मतलब है, कि श्रादमी को दीन होकर हाथ पसारना न पहे।

घुमक्कड़ नाम से हमारे सामने ऐसे न्यक्ति का रूप नहीं श्राता, जिसमें न संस्कृति है न शिचा। संस्कृति श्रीर शिचा तथा श्रात्मनम्मान मुमक्कड़ के सबसे श्रावश्यक गुण हैं। घुमक्कड़ चूं कि किसी मानव को न श्रपने से ऊंचा न नीचा सममता है, इसिलए किसीके मेस को धारण करके उसकी पांती में जा एक होकर बैठ सकता है। फटे चीथड़े, मिलन, कृष गात्र यायावरों के साथ किसी नगर या श्ररण्य में श्रीमन्न होकर जा मिलना भी कला है। हो सकता है वह यायावर प्रथम या दूसरी श्रेणी के भी न हों, लेकिन उनमें कभी-कभी ऐसे भी गुदड़ी के लाल मिल जाते हैं, जिन्होंने श्रपने पैरों से पृथिवो के बड़े भाग को नाप दिया है। उनके मुंह से श्रकृत्रिम भाषा में देश-देशान्तर की देखो बातें श्रीर दश्यों को सुनने में बहुत श्रानन्द श्राता है, हृदय में उत्साह बढ़ता है। मैंने तीसरी श्रेणी के घुमक्कड़ों में भी बन्धुता श्रीर श्रात्मीयता को इतनी मात्रा में देखा है, जितनो संस्कृत श्रीर शिचित-नागरिक में नहीं पाई जाती।

जो घुमक्कड़ नीचे की श्रेणी के लोगों में श्रीमन्न हो मिल सकता है, वह शारीरिक श्रम से कभी नहीं शर्मायगा। घुमक्कड़ के लिए शरीर से स्वस्थ ही नहीं कर्मण्य होना भी श्रावश्यक है, त्रर्थात् शारीरिक श्रम करने की उसमें चमता होनी चाहिए। घुमक्कड़ ऐसी स्थिति में भी पहुँच सकता है, जहां उसे तात्कालिक जीवन-निर्वाह के लिए श्रपने श्रम को बेवने की श्रावश्यकता हो। इसमें कौनसी लज्जा की बात है, यदि घुमक्कड़ किसी के विस्तरे को सिर या पीठ पर लादकर कुछ दूर पहुँवा दे, या किसीके बर्तन मलने, कपड़ा घोने का काम कर दे। साधारण मजदूर के काम कोकरने की चमता श्रीर उत्साह ऊंची श्रेणी के घुमक्कड़ बनने में बहुत सहायक हो सकते हैं। उनसे घुमक्कड़ बहुत श्रमुभव प्राप्त कर सकता है। शारीरिक श्रम स्वावलम्बी होने में बहुत

सहायक हो सकता है। स्वावलम्बी होने के लिए श्वीर उपाय रहने पर भी शारीरिक श्रम के प्रति श्रवहेलना का भाव श्रच्छा नहीं है।

घुमकड़ को समक्रना चाहिए, कि उसे ऐसे देश में जाना पड़ सकता है, जहाँ उसकी भाषा नहीं समक्ती जाती, श्रतएव वहाँ सीखे-सममे पुस्तकी ज्ञान का कोई उपयोग नहीं हो सकता। ऐसी जगह पर ऐसे व्यवसायों से पश्चिय लाभदायक सिद्ध होगा, जिनके लिए भाषा की श्रावश्यकता नहीं, जो भाषाहीन होने पर भी सर्वत्र एक तरह समसे जा सकते हों। उदाहरणार्थ हजामत के काम को ले लीजिए। हजामत का काम सीखना सबके लिए श्रासान है, यह मैं नहीं कहता, यद्यपि श्राजकल संपटी छुरे से सभी नागरिक श्रपने चेहरे को साफ कर लेते हैं। मैं समझता हूं, इस काम को स्वावलम्बन में सहायक बनाने के लिए चौर-कला को कुछ अधिक जानने की आवश्यकता है। अच्छा समसदार तरुण होने पर इसे सीखने में बहुत समय नहीं लगेगा श्रीर न लगातार हर रोज छ-छ घंटा सीखने में लगाने की श्रावश्यकता है। तरुण को किसी हजामत बनाने वाले से मेन्री करनी चाहिए श्रौर धीरे-धीरे विद्या को हस्तगत कर लेना चाहिए। बहुत-से ऐसे देश हैं, जहाँ चौर करना वंश-परम्परा से चला भ्राया पेशा नहीं है, अर्थात् हजामों की जाति नहीं है। दूर क्यों जाइये, हिमालय में ही इसे देखेंगे। वहाँ यदि जाति का हजाम, मिलेगा, तो वह नीचे मैदान से गया होगा। ऊपरी सतलज (किन्नर देश) में १६४८ में मैं विचर रहा था । मुक्ते कभी तीन-चार महीने में बाल कटवाने की श्रावश्यकता होती है। यदि कोई श्रपने केश श्रीर दाढ़ी को बढ़ा रखे, तो बुरा नहीं है। लेकिन मैं श्रपने लिए पसंद नहीं करता, इसीलिए तीन-चार महीने बाद केश छोटा करने की आव-श्यकता होती है। चिनी (किन्नर-देश) में मुक्ते ज़रूरत पड़ी। पता लगा, मिडिल स्कूल के देडमास्टर साहब चौर के हथियार भी रखते हैं, श्रीर श्रच्छा बनाना भी जानते हैं। यह भी पता लगा कि हेडमास्टर साहब स्वयं भले ही बना दें, लेकि हिथियार को दूसरे के हाथों में नहीं

देना चाहते - "लेखनी पुस्तकी नारी परहस्तगता गता" के स्थान पर "लेखनी चरिका कर्त्रा परहस्तगता गता" कहना चाहिए। हेडमास्टर साहब श्रपना चौर-शस्त्र सुके देने में श्रानाकानी नहीं करते, क्योंकि न देने का कारण उनका यही था कि अनाड़ी श्रादमी शस्त्र के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करना जानता । उन्होंने श्राकर स्वयं मेरे बाल काट दिए। श्रपने लिये होने पर तो काटने की मशीन काफी है। मैं वर्षों उमे अपने पास रखा करता था. हिन जब श्रापको चौरकर्म के द्वारा वा कालिक स्यावलम्बन का मार्थ द्वंदना है. तो जैसे-तेसे हजाम बनने से काम नहीं चलेगा। श्रापको इस कला पर श्रधिकार प्राप्त करना चाहिए, श्रौर जिस तरह चिनी के हेडमास्टर श्रीर उनके शिष्यों में एक दर्भन तरुग अच्छी हजामत बना सकते हैं. वैसा अभ्यास होना चाहिए। हजामत कोई सस्तो मज्री की चीज नहीं है। यूरोप के देशों में ती एक हजाम एक प्रोफेसर के बरावर पैसा कमा सकता है। एसिया के भी ऋधिकांश भागों में दो-चार हजा-मत बना कर श्रादमी चार-पांच दिन का खर्चा जमा कर सकता है। भावी धमकड़ तरुणों से मैं कहूंगा, कि ब्लेड से दाड़ी-मूँ छ तथा सशीन से बाल काटने तक ही सीमित न रहकर इस कला की अगली सीढ़ियों को पार कर लेना चाहिए। यह काम हाई स्कूल के अन्तिम दो वर्षी में सीखा जा सकता है और कालेज में तो बहुत खुशी से श्रपने की श्रभ्यस्त बनाया जा सकता है।

तरुण घुमक्कां के लिए जैसे चौर कम लाभदायक है, वैसे ही धुमक्का तरुणियों के लिए प्रसाधन-कला है। अपने खाली समय में वह इसे अच्छी तरह सीख सकती हैं। दुनिया के किसी भी अजंगल जाति या देश में प्रसाधन-कला घुमका रुख्यों के लिए सहायक हो सकती है। चाहे उसे अपने काम के लिए उसकी आवश्यकता न हो, लेकिन दूसरों को आवश्यकता होती है। प्रसाधन-कला का अच्छा परि-चय रखनेवाली तरुणियाँ घूमते-घामते जहाँ तहाँ अपनी ताल्डालिक

जीविका इससे श्रांजित कर सकती हैं। जिस तरह चौर-शस्त्रों को हरके-से हरूके रूप में रखा जा सकता है, वैसे ही प्रसाधन-साधनों को भी थोड़ी-सी शीशियों और चन्द शस्त्रों तक सीमित रखा जा सकता है। हाँ, यह उन्हर बतला देना है कि धुमक्कड़ होने का यह अर्थ नहीं कि हर धुमक्कड़ हर किसी कला पर श्राधकार प्राप्त कर सकता है। कला के सीखने में श्रम और लगन की श्रावश्यकता होती है, किंतु श्रम श्रोर लगन रहने पर भी उस कला की स्वाभाविक चमता न होने पर श्रादमी सफल नहीं हो सकता। इसलिए जबद्रस्ती किसी कला के सीखने की श्रावश्यकता नहीं। यदि एक में श्रचमता दीख पड़े, तो दूसरी को देखना चाहिए।

बिना श्रचर या भाषा के ऐसी बहुत-सी कलाएं श्रीर व्यवसाय हैं, जो घुमक इ के लिए दुनिया के हर स्थान में उपयोगी हो सकते हैं। उनके द्वारा चीन-जापान में; श्राय-तुर्की में; श्रीर बाजील-श्रर्जन्तीन में भी स्वच्छन्द विचर सकते हैं। कलाओं में बढ़ई, लोहार, सोनार की कलात्रों को ले सकते हैं। हमारे देश में त्राज भी एक प्रेजुएट क्लर्क से बदर्ड-लोहार कम मजदरी नहीं पाते । साथ ही इनकी मांग हर जगह रहती है। बढ़ई का काम जिसे मालूम है, वह दुनिया में कौनसा गांव या नगर है, जहां काम न पा जाय। ख्याल कीजिए आप कोरिया के एक गांव में पहुंच गए हैं। वहां किसी किसान के घर में सायंकाल मेह-मान हुए। सबेरे उसके मकान की किसी चीज को मरम्मत के योग्य समसकर श्रापने श्रपनी कला का प्रयोग किया। संकोच करते हुए भी किसान श्रीर कितनी ही मरम्मत करने की चीजों को श्रापके सामने रख देगा. हां सकता है, श्राप उसके लिए स्मृति-चिन्ह, कोई नई चीज बना हैं। निश्चय ही समिभए श्रापका परिचय उसी किसान तक सीमित नहीं रहेगा. बिल्क इस कला द्वारा गाँव-भर के लोगों से परिचय करते देर न लगेगी। फिर तो यदि चार-छ महीने भी वहां रहना चाहें, तो भी कोई तकलीफ नहीं होगी, सारा गांव श्रात्मीय बन जायगा। घुमक्कड़ केवल मजूरी के ख्याल से तो काम नहीं करता है। वह काम अच्छा श्रीर ज्यादा भी करेगा, किन्तु यदले में श्रावश्यक बहुत थोड़ी-सी चीजें लेगा। बढ़ई, लोहार, सोनार, दर्जी, घोगी, मेज- क़र्सी-बनकर श्रादि जैसी सभी कलाएं बढ़े काम की साबित होंगी।

घड़ीसाजी, छोटी-मोटी मशीनों की मरम्मत, विजली-भिस्त्री का काम जैसी और भी कलाएं हैं जिनकी सभी सभ्य देशों में एक सी मांग है, और जिनको तरुण अपने हाई स्कूल के अन्तिम वर्षों या कालेज की पढ़ाई के समय सीख सकता है। धुमक्कड़ को कलाओं के सम्बन्ध में यह वाक्य कंठस्थ कर लेना चाहिए—''मर्श्व मंत्रहः कर्त्तव्यः, कः काले फलदायकः।" उसके तर्कश में हर तरह के तीर होने चाहिए, न जाने कीन तीर की किस समय या स्थान में आवश्यकता हो। लेकिन, इसका यह अर्थ नहीं कि वह दुनिया की कलाओं व्यवसायों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए आधा जीवन लगा दे। यहां जिन कलाओं की बात कही जा रही है, वह स्वाभाविक रुचि रखने वाले व्यक्ति के लिए अल्पकाल-साध्य हैं।

फोटोग्राफी सोखना भी घुमक्कड़ के लिए उपयोगी हो सकता है। श्रागे हम विशेषतौर से लिखने जा रहे हैं कि उच्चकोटि का घुमक्कड़ दुनिया के सामने लेखक, किव या चित्रकार के रूप में श्राता है। घुमक्कड़ लेखक बनकर सुन्दर यात्रा-साहित्य प्रदान कर सकता है। यात्रा-साहित्य लिखते समय उसे फोटो-चित्रों की श्रावश्यकता मालूम होगी। घुमक्कड़ का कर्चव्य है कि वह श्रपनी देखी चीजों श्रीर श्रनुभूत घटनाश्रों को श्राने वाले घुमक्कड़ों के लिए लेखबद कर जाय। श्रालिर हमें भी श्रपने पूर्वज घुमक्कड़ों की लिखी कृतियों से सहायता मिली है, उनका हमारे उपर भारी ऋण है, जिससे हम तभी उह्या हो सकते हैं, जब कि हम भी श्रपने श्रनुभवों को लिखकर छोड़ जायं। यात्रा-कथा लिखने वालों के लिए फोटो कैमरा उतना ही श्रावश्यक है, जितना कलम-कागज। सचित्र यात्रा का मृत्य श्रिवक होता है।

जिन घुमक्कड़ों ने पहले फोटोग्राफी सीखने की श्रोर ध्यान नहीं दिया, उन्हें यात्रा उसे सीखने के लिए मजबूर करेगी । इसका प्रमाण मैं स्वयं मीजूद हुं। यात्रा ने सुक्ते लेखनी पकड़ने के लिए मजबूर किया या नहीं. इसके बारे में विवाद हो सकता है; लेकिन यह निर्विवाद है कि घुमक्कड़ी के साथ कलम उठाने पर कैमरा रखना मेरे लिए अनिवार्य हो गया। फोटो के साथ यात्रा-वर्णन अधिक रोचक तथा सगम बन जाता है। श्राप श्रपने फोटो द्वारा देखे दृश्यों की एक मांकी पाठक-पाठिकाओं को करा सकते हैं. साथ ही पत्रिकाओं और प्रस्तकों के पृष्ठों में अपने समय के व्यक्तियों, वास्तुओं-वस्तुओं, प्राकृतिक दश्यों श्रीर घटनाश्रीं का रेकार्ड भी छोड़ जा सकते हैं। फोटो श्रीर कलम मिलकर श्रापके लेख पर श्रधिक पैसा भी दिलवा देंगी। जैसे जैसे शिचा श्रीर श्रार्थिक तल ऊंचा होगा, वैसे-वैसे पत्र-पत्रिकाशों का प्रचार भी श्रधिक होगा, श्रौर उसीके अनुसार लेख के पैसे भी श्रधिक मिलेंगे। उस समय भारतीय-घ्रमक्कड को यात्रा-लेख लिखने से, यदि वह महीने में दो-चार भी लिख दें. साधारण जीवन-यात्रा की कठिनाई नहीं होगी। लेख के अतिरिक्त आप यदि अपनी पीठ पर दिन में फोटो घो लेने का सामान ले चल सकें. तो फोटो खींचकर अपनीयात्रा जारी रख सकते हैं। फोटो की भाषा सब जगह एक है, इसलिए वह सर्वत्र लाभदायक होगा. इसे कहने की आवश्यकता नहीं।

स्वावलम्बी बनाने वाली सभी कलाओं पर यहां लिखना या उनकी सूची संभव नहीं है, किन्तु इतने से पाठक स्वयं जान सकते हैं, कि नगर श्रीर गाँव में रहने वाले लोगों की आवश्यकता-पूर्ति के लिए कौनसे व्यवसाय उपयोगी हो सकते हैं, श्रौर जिनको आसानी से सीखा जा सकता है। कितने ही लोग शायद फलित ज्योतिष और सामुद्रिक (हस्तरेखा) को भी धुमक्कड़ के लिए आवश्यक बतलाई। बहुत से लोग इन 'कलाओं' पर ईमानदारी से विश्वास कर सकते हैं, और कितने ही ऐसे हैं, जो इनका व्यवसाय नहीं करते। तो भी मैं समकता हूँ, यह आदमी की

कमजोरियों से फायदा उठाना होगा, यदि घुमक्कड़ जोतिस श्रोर सायु-दिक के भरोसे स्वावलम्बी बनना चाहें। वंचना घुमक्कड़ धर्म के विरुद्ध चीज है, इसलिए मैं कहूँगा, घुमक्कड़ यदि इनसे श्रलग रहें तो श्रच्छा है। वैसे जानता हूं, श्रधिकांश देशों में —जहां जबदंस्ती मानव-समाज को धनिक-निर्धन वर्ग में विभिक्त कर दिया गया है — लोगों का भविष्य श्रनि-श्चित है, वहाँ जोतिस तथा सामुद्धिक पर मरने वाले हजारों मिलते हैं। यूरोप के उन्नत देशों में भी जोतिनियों, सामुद्धिक-वेत्ताश्रों की पांचों घी में देखी जाती हैं। हां, यदि घुमक्कड़ मेस्मरिज्म श्रोर हेप्नाटिज्म का श्रभ्यास करे, तो कभी-कभी उससे लोगों का उपकार भी कर सकता हैं, श्रीर मनोरंजन तो खूब कर सकता है। हाथ की सफाई, जादूगरी का भी घुमक्कड़ के लिए महत्व है। इनसे जहां लोगों का श्रच्छा मनोरंजन हो सकता है, वहां यह घुमक्कड़ के स्वावलम्बी होने के साधन भी हो सकते हैं।

श्रंत में में एक श्रौर ऐसी कला या विद्या की श्रोर ध्यान दिलाना चाहता हूँ, जिसका महत्व घुमक्कड़ के लिए बहुत है। वह है प्राथमिक सहायता श्रौर चिकित्सा का श्रारंभिक ज्ञान। मैं समस्ता हूं, इनका ज्ञान हरेक घुमक्कड़ को थोड़ा-बहुत होना चाहिए। चोट में कैसे बांधना श्रौर किन दवाश्रों को लगाना चाहिए, इसे जानने के लिए न बहुत समय की श्रावश्यकता है न परिश्रम की ही। साधारण बीमारियों के उपचार की बातें भी दो-चार पुस्तकों के देखने या किसी चिकित्सक के थोड़े-से संपर्क से जानीजासकती हैं। साधारण चीर-फाइ श्रौर साधारण इन्जेक्शन देने का ढंग जानना भी श्रासान है। पेंसिलीन जैसी छुछ दवाइयां निकली हैं, जिनसे बाज समय श्रादमी को मृत्यु के मुंह से निकाला जा सकता है। इसके ज्ञान के लिए भी बहुत समय की श्रावश्यकता नहीं। इस प्रकार चिकित्सा का थोड़ा ज्ञान घुमक्कड़ के लिए श्रावश्यक है। सेर-श्राध-सेर भार में चिकित्सा की सामग्री लेकर चल सके तो कोई हर्ज नहीं है। कभी-कभी श्रस्पताल श्रौर ढाक्टरों

की पहुंच से दूर के स्थानों में न्याधि-पीड़ित मतुष्य को देखकर घुमक्कड़ को अफसोस होने लगता है, कि क्यों मैंने चिकित्सा का थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त नहीं कर लिया। न्याधि-पीड़ित उससे सहानुभूति की आशा रखता है, घुमक्कड़ का हृद्य उसे देखकर आर्द्र हो जाता है; किंतु यदि चिकित्सा का कुछ भी परिचय नहीं है, तो अपनी विवशता पर बहुत खेद होने लगता है। इसीलिए चिकित्सा का साधारण ज्ञान घुमक्कड़ के लिए दूसरे की नहीं अपने हृदय की चिकित्सा के लिए जरूरी है।

## शिल्प और कला

घुमक्कड़ के स्वावलम्बी होने के लिए उपयुक्त कुछ बातों को हम बतला चुके हैं। चौरकर्म, फोटोग्राफी या शारीरिक श्रम बहुत उपयोगी काम हैं, इसमें शक नहीं: लेकिन वह घुमक्कड की केवल शरीर-यात्रा में ही सहायक हो सकते हैं। उनके द्वारा वह ऊंचे तल पर नहीं उठ सकता, अथवा समाज के हर वर्ग के साथ समानता के साथ घुल-मिल नहीं सकता। सभी वर्ग के लोगों में घुल-मिल जाने तथा श्रपने कृतित्व को दिखाने का श्रवसर युमक्कड को मिल सकता है, यदि उसने लिखत-कलाओं का अनुशीलन किया है। हाँ, यह श्रवश्य है कि ललित-कलाएं केवल परिश्रम के बल पर नहीं सीखी जा सकतीं। उनके लिए स्वामा-विक रुचि का होना भी श्रावश्यक है। लालित-कलाश्रों में नृत्य, वाद्य श्रौर गान तीनों ही श्रिघिकाधिक स्वाभाविक रुचि तथा संलग्नता को चाहते हैं। नाचने से गाना श्रधिक कठिन है, गाने श्रीर बजाने में कौन ज्यादा कप्ट-साध्य है. इसके बारे में कहना किशी मर्मज्ञ के लिए ही उचित हो सकता है। वस्तुतः इन तीनों में कितना परिश्रम श्रीर समय लगता है, इसके बारे में मेरा ज्ञान नहीं के बराबर है। लेकिन इनका प्रभाव की श्रपरिचित देश में जाने पर देखा जाता है, उससे इनकी उपयोगिता साफ मालूम पड्ती है। यह हम श्राशा नहीं करते, कि जिसने घुमकड़ी का वत जिया है, जिसे कठिन से-कठिन रास्तों से दुरूह स्थानों में जाने का शौक है, वह कोई नृत्यमंडली बनाकर दिग्विजय करने निकलेगा। वस्तुतः जैसे "सिंहों के लॉहड़े नहीं" होते, वैसे ही घुमक्तड़ भी जमात बांघ के नहीं घूमा करते। हो सकता है, कभी दो या तीन घुमक्कड़ कुछ दिनों तक एक साथ रहें, लेकिन उन्हें तो अन्ततः अपनी यात्राएं स्वयं ही पूरी करनी पड़ती हैं। हां, तरुखियों के लिए, जिनपर मैं आगे लिख्ंगा, यह अच्छा है, यदि वह तीन-तीन की भी जमात बांध के चूमें। उनके आत्म-विश्वास को बढ़ाने तथा पुरुषों के अत्याचार से रचा पाने के लिए यह अच्छा होगा।

नृत्य के बहुत से भेद हैं, मुक्ते तो उनमें सबका नाम भी ज्ञात नहीं है। मोटे तार से हरेक देश का नृत्य जन-नृत्य तथा उस्तादी (क्ला-सिकल ) नृत्य दो रूपों में बंटा दिखाई पड़ता है। साधारण शारीरिक व्यायाम में मन पर बहुत द्वाव रखना पड़ता है, किन्तु नृत्य ऐसा व्यायाम है, जिसमें मन पर बलात्कार करने की आवश्यकता नहीं; उसे करते हुए अदमो को पता भी नहीं लगता, कि वह किसी शारीरिक परिश्रम का काम कर रहा है। शरीर को कर्मण्य रखने के लिए मनुष्य ने श्रादिम-काल में नृत्य का आविष्कार किया, अथवानुत्य के लाभ को सममा। नृत्य शरीर को दृढ़ श्रीर कर्मण्य ही नहीं रखता, बिल्क उसके श्रंगों को भी सुडौल बनाये रखता है। नृत्य के जो साधारण गुण हैं, उन्हें घुमक्कड़ों से भिन्न लोगों को भी जानना चाहिए। श्रफसोस है, हमारे देश में पिछली सात-ग्राठ सदियों में इस कला की बड़ी ग्रवहेलना हुई। इसे निम्न कोटि का व्यवसाय समक्त कर तथाकथित उच्च वर्ग ने छोड़ दिया। त्रामीण मजूर-जातियाँ नृःयक्तला को अपनाए रहीं, उनमें से कितने ही नृत्यों को वर्त्तमान सदी के आरम्भ तक अहीर, भर जैसी जातियों ने सुरहित रखा। लेकिन जब उनमें भी शिचा बढ़ने लगी, तथा ''वड़ें.'' की नकल करने की प्रवृत्ति बढ़ी, तो वह भी नृत्य को छोड़ने लगे। पिछ्ले तीस सालों में फरी ( श्रहीरी ) का नृत्य युक्तप्रान्त श्रौर बिहार के जिले-के-जिले से लुप्त हो गया। जहाँ बचपन में कोई श्रहीर-विवाह हो ही नहीं सकताथा, जिसमें वर-वधू के पुरुष संबन्धी ही नहीं बक्कि माँ श्रीर सास ने नहीं नाचा हो। रूस के परिश्रमसाध्य

सुन्दर नृत्यों को देखकर मुक्ते अहीरी नृत्यका स्मरण आया और १६३६ में उसे देखने की बड़ी इच्छा हुई, तो बड़ी मुश्किल से गोरखपुर जिले में एक जगह वह नृत्य देखने को मिला। मैं समक्षता था, बचपन के नृत्य का जो रूप स्मृति ने मेरे सामने रखा है, शायद वह अतिशयोक्ति-पूर्ण हो, किन्तु जब नृत्य को देखा, तो पता लगा कि स्मृति ने अतिश्योक्ति से काम नहीं लिया है। लेकिन इसका खेद बहुत हुआ कि इतना सुन्दर नृत्य इतनी तेजी के साथ लुप्त हो चला। उसके बाद खुल कोशिश भी की, कि उसे प्रोत्साहन दिया जाय किन्तु मैं उस अवस्था से पार हो चुका था, जबिक नृत्यको स्वयं सीख सक् । उसके लिए आंदोलन करने को जितने समय की आवश्यकता थी, उसे भी में नहीं दे सकताथा।

फरी (श्रहीरी) नृत्य के श्रतिरिक्त हमारे देश में प्रदेश-भेद से विविध प्रकार के सुन्दर नृत्य चलते हैं, श्रीर बहुत-से श्रमी भी जीवित हैं। पिछले तीस वर्षों से संगीत श्रीर नृत्य को फिर से उज्जीवित करने का हमारे देश में प्रयत्न हुश्रा है। जहां भद्र-महिलाश्रों के लिए नृत्य गीत परम वर्जित तथा श्रत्यन्त लांछनीय चीज सममी जाती थी, वहाँ श्रव भद्र-कुलों की लड़िक्यों की शिचा का वह एक श्रंग बनगया है। लेकिन श्रभी हमारा सारा ध्यान केवल उस्तादी नृत्य श्रीर संगीत पर है, जनकला की श्रीर नहीं गया है। जनकला दरश्रसल उपेचणीय चीज नहीं है। जनकला के संपर्क के बिना उस्तादी नृत्य-संगीत निर्जीव हो जाता है। हमें श्राशा करनी चाहिए, कि जनकला की श्रीर भी ध्यान जायगा श्रीर लोगों में जो पचपात उसके विरुद्ध कितने ही समय से फैला है, वह हटेगा। मैं धुमक्कड़ को केवल एक को चुनने का श्राग्रह नहीं कर सकता। यदि मुक्ते कहने का श्रधिकार हो, तो मैं कह सकता हूँ— युमक्कड़ को जन-संगीत, जन-नृत्य श्रीर जन-वाश को प्रथम सीखना चाहिए, उसके वाद उस्तादी कला का भी श्रभ्यास करना चाहिए।

जनकला को मैं क्यों प्रधानता दे रहा हूं, इसका एक कारण

बुमक्कड़ी-जीवन की सीमाएं हैं। उच्च श्रेणी का बुमक्कड आधे दर्जुन सटकेस. बक्स और दूसरी चीजें ढोये-ढोये सर्वत्र नहीं वूमता फिरेगा। उसके पास उतना ही सामान होना चाहिए, जितने को जरूरत पड़ने पर वह स्वयं उठा कर ले जा सके। यदि वह सितार, वीला, पियानी जैसे वाचों द्वारा ही अपने गुणों को प्रदर्शित कर सकता है. तो इन सबको साथ ले जाना सुरिकल होगा। वह बाँसरी को श्रव्छी तरह ले जा सकता है, उसमें कोई दिक्कत नहीं होगी। जरूरत पड़ने पर बांस जैसी पोली चीज को लेकर वह स्वयं लाल लोहे से छिद्र बना के बंशी तैयार कर सकता है। मैं तो कहंगा: घुमक्कड़ के लिए बांसरी बाजों की रानी है। कितनी सीधी-सादी, कितनी हल्की श्रौर कितनी सस्ती—किन्तु साथ ही कितने काम की है! जैसे बांसरी बजानेवाला चतुर पुरुष अपने देश के जन तथा उस्तादी गान को बाँखरी पर उतार सकता है. नुख-गीत में सहायता दे सकता है. उसी तरह सिद्धहरूत बाँसुरीबाज किसी देश के भी गीत और नत्य को अपनी वंशी में उतार सकता है। कृष्ण की वंशी का हम गुणगान सुन चुके हैं, मैं उस तरह के गुणगान के लिए यहाँ तैयार नहीं हं। मैं सिर्फ घुमनकड़ की दृष्टि से उसके सहत्व को दतलाना चाहता हैं। तान को सुनकर इतना तो कोई भी समम सकता है. कि बाँसरी पर प्रमुख होना चाहिए, फिर किसी गीत श्रीर लय को मामूली प्रयास से वह अदा कर सकता है। मान लीजिए, हमारा घुमक्कड़ चंशी में निष्णात है। वह पूर्वी तिब्बत के खम प्रदेश में पहुँच गया है, उसको तिब्बती भाषा का एक शब्द भी नहीं मालूस है। खम प्रदेश के कितने ही भागों के पहाड़ जंगल से याच्छादित हैं। हिमालय की ललनायों की मांति वहां की स्त्रियाँ भी घास, लकड़ी या चरवाही के लिए जंगल में जाने पर संगीत का उपयोग श्वास-प्रश्वास की तरह करती हैं। मान लीजिए तरुण घुमक्कड़ उसी समय एकाएक. वहाँ पहुँचता है श्रीर किसी कोक्लि-कंठी के संगीत को ध्यान से सुनता है। बगल की जेब में पही या जामा के कमरबंद में लगी श्रथवा पीठ की

भागी में पड़ी वंशी को हाथ में उठाता है। उसे मंह पर लगाकर घीरे-धीर कोकिल-कंठी के लय को उतारने की कोशिश करता है और थोड़े समय में उसको पकड़ खेता है। जनगीतों के लय बहत सरल होते हैं. किन्त उसका अर्थ यह नहीं कि उसमें मनोहारिता की कमी होती है। तहरा दस-पाँच मिनट के परिश्रम के बाद श्रब किसी देवदार की वनी छाया के नीचे बैठा कोकिलकंठी के गान को अपनी वंशी में अला-पने खगता है। वंशी का स्वर श्रास-पास में रहने वाली कोकिल-कंठियों को अपनी और खींचे बिना नहीं रहेगा। आगन्तक को पश्चिय करने के लिए कोशिश करने की आवश्यकता नहीं, स्वयं कोकिल-कंडी श्रीर उसकी सहचरियाँ यमना किनारे बज की गोपिकाओं की भांति विह्नल हो उठेंगी। श्रागन्तुक तरुए खम्पा लोगों की भाषा नहीं जानता, उसकी सुरत मंगोलियन नहीं है, इससे कोकिल-कंठी समक्त जायगी कि यह कोई विदेशी है। किन्तु वह तान तो विदेशी नहीं है। अब भाषा न जानने की बाधा हवा हो जायगी और तरुण घुमक्कड़ परमपरिचित थन जायगा । इशारे से वह सारी बार्ते जान जायंगी श्रीर उनके मन में यह ध्यान या जायगा कि इस अपरिचित प्रवासी को श्रकेले निरीह नहीं छोड़ना चाहिए। बस दो तानों की श्रोर श्रावश्यकता होगी. फिर वह न्यक्ति खम देश के पहाड़ों में भी अपने को बैसे ही समभेगा. जैसे कि वह भारत के किसी कोने में हो। यदि बीखा, सितार जैसे लम्बे.मारी बाजों को वहाँ ले जाया जा सके, तो सिद्धहस्त घ्रमक्कड़ उनके द्वारा श्रपने गुण का परिचय दे सकेगा, किन्तु क्या वह उन्हें उसी तरह साथ ले जा सकता है, जैसे वंशी को । इसीलिए मैं वंशी को घम-क्कइ का श्रादर्श वाद्य कहता हैं।

वंशी हो या कोई भी वाद्य, उसका सीखना उसी व्यक्ति के लिए सुगम श्रीर श्रव्यसमय-साध्य है जिसकी संगीत के प्रति स्वतः रुचि है। मैं एक वारह-तेरह वर्ष के लड़के केबारे में जानता हूं। उसे वंशी बजाने का शौक था। खेल-खेल में वंशी बजाना इसने शुरू किया, किसी के पास सीखने नहीं गया। जो कोई गाना सुनता, उसे अपनी वंशी में उतारने की कोशिश कर । इस प्रकार १२-१३ वर्ष की उम्र में वंशी उसकी हो गई थी। जिसमें स्वाभाविक रुचि है, उसे वंशी को अपनाना चाहिए। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं, कि जिसका दूसरे वाद्यों से प्रेम है, वह उन्हें छूए नहीं। वंशी को तो उसे कम-से-कम अवश्य ही सीख लेना चाहिए, इसके बाद चाहे तो और भी वाद्यों को सीख सकता है। बेहतर यह भी है कि अवसर होने पर आदमी एकाध विदेशी वाद्यों का भी परिचय प्राप्त कर ले। पहली यूरोपयात्रा में मैं जिस जहाज में जा रहा था, उसमें यूरोपीय नर-नारी काफी थे, और सायंकाल को नृत्यमंडली जम जाती थी। अधिकतर वह प्रामोफोन रिकार्डों से बाजे का काम खेते थे। मेरे एक भारतीय तरुण साथी उसी जहाज से जा रहे थे, बह भारतीय बाजों के अतिरिक्त पियानो भी बजाते थे। लोगों ने उन्हें द्वं ह लिया, और दो ही दिनों में देखा गया, वह सारी तरुण-मंडली के दोस्त हो गए। जैसे जहाज में हुआ, वैसे ही यदि यूरोप के किसी गाँव में भी वह पहुँचते, तो वहां भी यही बात होती।

वाद्य से नृत्य लोगों को मित्र बनाने में कम सहायक नहीं होता। जिसकी उधर रुचि है, श्रौर यदि वह एक देश के २०-३० प्रकार के नृत्य को श्रूच्छी तरह जानता है, उसे किसी देश के नृत्य को सीखने में बहुत समय नहीं लगेगा। यदि वह नृत्य में दूसरों के साथ शामिल हो जाय तो एकमयता के बारे में क्या कहना है! मैं श्रूपने को भाग्यहीन सममता हूं, जो नृत्य, वाद्य श्रौर संगीत में से मैंने किसीको नहीं जान बाया। स्वाभाविक रुचि का भी सवाल था। नवतरुणाई के समय प्रयत्न करने पर कुछ सीख जाता, इसमें भारी संदेह है। मैं यह नहीं कहता कि नृत्य, गीत, वाद्य को बिना सीखे युमक्कड़ कृतकार्य नहीं हो सकता, श्रौर न यही कहता हूँ कि केवल परिश्रम करके श्रादमी इन जिलत-कलाश्रों पर श्रिषकार प्राप्त कर सकता है। लेकिन इनके लाभ को देखकर भावी युमक्कड़ों से कटूंगा कि कुछ भी रुचि होने पर वह

संगीत-नृत्य-वाद्य को श्रवश्य सीखें। नृत्य जान पड़ता है, वाद्य श्रीर संगीत से कुछ श्रासान है। कितनी ही बार बहुत लालसा से नवतरुगियों की प्रार्थना को स्वीकार करके मैं श्रखाड़े में नहीं उतर सका। कितनों को तो मेरे यह कहने पर विश्वास नहीं हुन्ना, कि मैं नाचना नहीं जानता । यूरोप में हरेक व्यक्ति कुछ-न-कुछ नाचना जानता है। पिछले साल (१६४८) किसरदेश के एक गाँव की बात याद आती है। उस दिन ग्राम में यात्रोत्सव था। मन्दिर की तरफ से घडों नहीं क डों शराब बाँटी गई। बाजा शुरू होते ही श्रखाड़े में नर-नारियों ने गोल पांती (मंडली) बनानी शुरू की, जो बढ़ते-बढ़ते तेहरी पंक्ति में परिणत हो गई। किन्नरियों का कंठ जितना ठोस श्रीर मधुर होता है. उनका संगीत जितना सरल श्रीर हृदयशाही होता है. नृत्य उतना क्या, कुछ भी नहीं होता । उस नृत्य में वस्तुतः परिश्रम होता नहीं दिख रहा था। जान पड़ता था, लोग मजे से एक चक्कर में धीरे-धीरे टहल रहे हैं। बस बाजे की तान पर शरीर जरा-सा आगे-पीछे मुक जाता। इस प्रकार यद्यपि नृत्य श्राकर्षक नहीं था. किन्त यह तो देखने में श्रा रहा था कि लोग उसमें सम्मिलित होने के लिए बड़े उत्सुक हैं। इमारे ही साथ वहाँ पहुंचे कचहरी के कुछ कायस्य (लिपिक) श्रीर चपरासी मौजूद थे। मैंने देखा, कुछ ही मिनटों में शराब की लाली श्रांंखों में उतरते ही बिना कहे ही वह नृत्य-मंडली में शामिल हो गए, श्रौर श्रब उसी गाँव के एक व्यक्ति की तरह भूमने लगे। मैं वहाँ प्रतिष्ठित मेहमान था। मेरे लिए खास तौर से ऊसी लाकर रखी गई थी। मैं उसे पसन्द नहीं करता था। सभे श्रफसोस हो रहा था-काश, में थोड़ा भी इस कला में प्रवेश रखता ! फिर तो निश्चय ही मन्दिर की छत पर कुर्सी न तोड़ता, बल्कि मंडली में शामिल हो जाता। उससे मेरे प्रति उनके भावों में दुष्परिवर्तन नहीं होता। पहले जैसे में दूर का कोई भद्र पुरुष समका जा रहा था, नृत्य में शामिल होने पर उनका पात्मीय बन जाता। घुमक्कड नृत्यकला में श्रमिज होकर यात्राश्ची को बहुत सरस घोर श्राकर्षक बना सकता है, उसके जिए सभी जगह श्रात्मीय बंधु सुलभ हो जाते हैं। नृत्य, संगीत घोर वाद्य वस्तुतः कला नहीं, जादू हैं। पहिले बतला सुका हैं, कि घुमक्कड़ मानवमात्र को श्रपने समान समकता है, नृत्य तो क्रियात्मक रूप से श्रात्मीय बनाता है।

जिसकी संगीत की श्रोर प्रवृत्ति है, उसे भारतीय संगीत के साथ कुछ विदेशी संगीत का भी परिचय प्राप्त करना चाहिए। अपने देश के भोजन की तरह ही अपना संगीत भी अधिक प्रिय लगता है। शारंभ में तो श्रादमी अपने संगीत का अंध पत्तपाती होता है, और दूसरे देश के संगीत की श्रवहेलना करता है, तुच्छ समस्ता है। श्रादमी ऐसा जान-वुसकर नहीं करता, बल्कि जिस तरह विदेशी भोजन में रुचि के लिए श्रभ्यास की श्रावश्यकता होती है, वही बात संगीत के बारे में भी है। लेकिन जब विदेशी संगीत को ध्यान से सुनता है, बारीकियों से परिचय श्राप्त करता है. तो उसमें भी रस श्राने लगता है। यह श्रफसोस की बात है, कि हमारे देश में विदेशी संगीत को गुणीजन भी श्रवहेलना की दृष्टि से देखते हैं: इससे वह दूसरों को हानि नहीं पहुँचा सकते. हाँ. श्रपने सम्बन्ध में श्रवश्य बरी धारणा पैदा करा सकते हैं। हम विदेशी संगीत के साथ सहात्भृति का अभ्यास कर इस कमी को दर कर सकते हैं। संगीत, विशेषकर विदेशी संगीत के परिचय में भी बहुत सुभीता होगा, यदि हम परिचम की संगीत की संकेत-लिपि को सीखें। हमारे देश में श्रपनी श्रलग स्वर्शलिप बनाई गई है, श्रीर उसमें भी भिनन-भिनन श्राचार्यों ने श्रलग-श्रलग स्वर्शलिप चलानी चाही है। पाश्चात्य स्वर-जिपितोक्यो, रोम से सानकांसिस्को तक प्रचित्रत है। कोई जापानी यह शिकायत करते नहीं पाया जाता कि उसका संगीत पश्चिमी स्वरिलिप में नहीं लिखा जा सकता। लेकिन हमारे गुणी कहते हैं. कि भारतीय-संगीत को पश्चिमी स्वरिलिप में नहीं उतारा जा सकता। पहले तो मैं यह कहने का साहस नहीं कर सकता था. लेकिन रूस के एक तरुश संगीतज्ञ ने जब भारतीय ग्रामोफोन रेकार्ड से हमारे उस्तादी संगीत की

यूरोपीय स्वरितिष में उतार कर पियानो पर बजा दिया, उस दिन से मुके विश्वास हो गया, कि हमारे संगीत को पश्चिमी स्वरितिष में उतारा जा सकता है। हाँ, उसमें जहाँ-तहाँ हक्का-सा परिवर्तन करना पहेगा। श्राबिर संस्कृत श्रांर पाली लिखने के लिए भी रोमन लिपि का प्रयोग करते वक्त थोड़े-से संकेतों में परिवर्तन की श्रावश्यकता पड़ी। संगीत के संबंध में भी उसी तरह कुछ चिन्ह बढ़ाने पड़ेंगे। मैं सममता हूं, पश्चिमी स्वरिलिप को न श्रपनाकर हम श्रपनी हानि कर रहे हैं। जिन देशों में वह स्वरिलिप स्वीकार कर ली गई है, वहाँ लालों लड़के- बढ़िकयाँ इस स्वरिलिप में छपे प्रन्थों से संगीत का श्रानन्द लेते हैं। हमारा संगीत यदि पश्चिमी स्वरिलिप में लिखा जाय, तो वहाँ के संगीत श्रीमयों को उससे परिचय श्राप्त करने का श्रव्छा श्रवसर मिलेगा, श्रोंर फिर वह हमारी चीज की कदर करने लगेंगे।

खेर, पश्चिमी स्वरितिष को हमारे गुणिजन कब स्वीकार करेंगे, इसे समय बतलायगा, किन्तु हमारे घुमक्कड़ों के पास तो ऐसी संकीर्णता नहीं फटकनी चाहिए। उन्हें पश्चिमी स्वरितिषि द्वारा भी संगीत सीखना चाहिए। इसके द्वारा वह स्वदेशी और विदेशी दोनों संगीतों के पास पहुँच सकते हैं, उनका आनन्द ले सकते हैं; इतना ही नहीं,बिक श्रज्ञात देशों में जाकर उनके संगीत का आसानी से परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

संचेप में यह कहा जा सकता है, कि घुमक के लिए नृत्य, वाद्य क्रीर संगीत तीनों का भारी उपयोग है। वह इन लिलत-कलाश्रों द्वारा किसी भी देश के लोगों में श्रात्मीयता स्थापित कर सकता है, श्रीर कहीं भी एकान्तता का श्रनुभव नहीं कर सकता। जो बात इन लिलत-कलाश्रों श्रोर तरुण घुमक्क कों के लिए कही गई है, वही बात तरुणी- खुमक्क हों के लिए भी हो सकती है। घुमक्म इन्तरुणी को नृत्य-वाद्य-संगीत का श्रभ्यास श्रवश्य करना चाहिए। घूमने में बहुत सुभीता होगा, यदि वह पुस्तकी ज्ञान से उत्तर उठकर संगीत के समुद्र में गोता लगायें।

## पिछड़ी जातियों में

बाहरवालों के लिए चाहे वह कष्ट, भय और रूखेपन का जीवन मालूम होता हों, लेकिन घुमकड़ी-जीवन घुमक्कड़ के लिए मिसरी का बड़ू है, जिसे जहाँ से खाया जाय वहीं से मीठा खगता है-मीठा से मतलब स्वाद से है। सिर्फ मिठाई में ही स्वाद नहीं है, छुत्रों रसों में श्रपना-श्रपना मधुर स्वाद है। धुमक्कड़ की यात्रा जितनी कठिन होगी, उतना ही श्रधिक उसमें उसको श्राकर्षण होगा। जितना ही देश या प्रदेश अधिक अपरिचित होगा, उतना ही अधिक वह उसके लिए लुभावना रहेगा। जितनी ही कोई जाति ज्ञान-चेत्र से दर होगी, उतनी ही वह बुमकद के लिए दर्शनीय होगी । दुनिया में सबसे श्रज्ञात देश श्रीर श्रज्ञात दृश्य जहाँ हैं. वहीं पर सबसे पिछडी जातियाँ दिखाई पडती हैं। घुमकड़ प्रकृति या मानवता को तटस्थ की दृष्टि से नहीं देखता, उनके प्रति उसकी अपार सहानुभूति होती है और यदि वह वहाँ पहंचता है, तो केवल श्रपनी घुमक्कड़ी प्यास को ही पूरा नहीं करता, बल्कि दुनिया का ध्यान उन पिछड़ी जातियों की श्रोर श्राकृष्ट करता है, देशभाइयों का ध्यान छिपी संपत्ति श्रौर वहां विचरते मानव की दरिद्रता की श्रोर श्राकषित करने के लिए प्रयत्न करता है। श्रक्रीका, एसिया या श्रमेरिका की पिछड़ी जातियों के बारे में धुमक्कड़ों का प्रयत्न सदा स्तुत्य रहा है। हाँ, मैं यह प्रथम श्रे शी के घुमक्कड़ों की बात कहता हूं, नहीं तो कितने ही साम्राज्य-लोलुप घुमक्कइ भी समय-समय पर इस परिवार को बद-नाम करने के लिए इसमें शामिल हुए श्रौर उनके ही प्रयत्न कापरिणाम हुआ, तस्मानियन जाति का विश्व से उठ जाना, दूसरी बहुत-सी जातियों का पतन के गर्त में गिर जाना। हमारे देश में भी अंग्रे जों की छोर से आँख पोंछने के लिए ही आदिम जातियों की छोर ध्यान दिया गया और कितनी ही बार देश की परतन्त्रता को मजबूत करने के लिए उनमें राष्ट्रीयता-किरोधी-भावना जागृत करने की कोशिश की गई। भारत में पिछड़ी जातियों की संख्या दो सौ से कम नहीं है। यहाँ हम उनके नाम दे रहे हैं, जिनमें भावी धुमक्कड़ों में से शायद कोई अपना कार्य-चेत्र बनाना चाहें। पहले हम उन प्रान्तों की जातियों के नाम देते हैं, जिनमें हिन्दो समझी जा सकती है—

१. युक्त प्रांत में-

(१) खरवार
(६) कोल
(७) श्रोका

(४) गोंड

२. पूर्वी पंजाब के स्पिती श्रीर लाहुल हलाके में तिटबती-भाषा-भाषी जातियाँ बसती हैं, जो श्रांशिक तौर से ही पिछड़ी हुई हैं।

## ३. बिहार में-

(१) ग्रसुर	(११) घटवार
(२) बनजारा	(१२) गोंड
(३) वथुडी	(१३) गोराइन
(४) बेटकर	(१४) हो
(१) बिंभिया	(१४) जुद्यांग
(६) बिरहोर	(१६) करमाली
(७) बिर्जिया	(१७) खडिया
( = ) चे <b>रो</b>	(१८) खड़वार
(१) चिकबड़ाइक	(१६) खेतौड़ी
(१०) गडबा	(२०) खोंड

(२१) किसान	(२८) उडाँव
(२२) कोली	(२६) पढ़िया
(२३) कोरा	(३०) संथाल
(२४) कोरवा	(३१) सौरियापहड़िया
(२४) महली	(३२) सवार
(२६) मलपदृङ्या	(३३) थारू
(२७) सुंडा	
इनके अतिरिक्त निम्न जातियाँ	भी बिहार में हैं—
(३४) बौरिया	(३८) पान
(३४) भोगता	(३१) रजवार
(३६) भूमिज	(४०) तुरी
(३७) घासी	
४. मध्य	बदेश में—
(१) गोंड	(१४) भील
(२) कवार	(१६) सु'इहार
(३) मरिया	(१७) धनवार
( ४ ) मुरिया	(१८) भैना
(१) हल्बा	(१६) परजा
(६) परघान	(२०) कमार
(७) उडाँव	(२१) मुंजिया
( = ) बिंमत्वार	(२२) नगरची
(१) ग्रंघ	(२३) श्रोका
(१०) भरिया-सुमिया	(२४) कोरकू
(११) कोली	(२४) कोल
(१२) भट्टा	(२६) नगसिया
(१३) बैगा	(२७) सवारा
(१४) कोलम्	(२⊏) कोरवा

(२६) मकवार	(३३) निहास
(३०) खिंड्या	(३४) बिरहुल (बिरहोर)
(३१) सौता	(३४) रौतिया
(३२) कोंघ	(३६) पंडो
४. मद्रास प्रांत—हिन्दी	भाषा-भाषी प्रांतों के बाहर पहले मदास
प्रांत को ले लीजिए-	· ·
(१) बगता	(२२) कोंडा-कापू
(२) भोदृदास	(२३) कोंडा-रेड्डी
(३) सुमियां	(२४) कोटिया
(४) विसोई	(२४) कोया ( गौड़ )
(१) ढक्कदा	(२६) मदिगा
(६) डोम्ब	(२७) माला
(७) गडवा	(२८) माली
(८) घासी	(२४) मौने
(१) गोंड़ी	(३०) मन्नादोरा
(१०) गौडू	(३१) सुरा दोरा
(११) कौसल्यागौडू	(३२) मूली
(१२) मगथा गौडू	(३१) सुरिया
(१३) सीरिथी गौडू	(३४) श्रोजुलू
(१४) होलवा	(३१) श्रोमा नेतो
(११) जदपू	(३६) पैगारपो
(१६) जटपू	(३७) पलसी
(१७) हम्मार	(१८) पल्ली
(१८) बत्तीस	(३१) पेंतिया
(१६) होडू	(४०) पोरजा
(२०) होम्मार	(४१) रेड्डी होरा
(२१) कोंडाघारा	(४२) रेल्बी (सचंडी)

•		
(४३) रोना	(४४) सवर	
६. बंबई—मदास की पिछ	ड़ी जातियों में घुमक्कड़ के लिए हिंदी	
उतनी सहायक नहीं दोगी, किन्तु	बम्बई में उक्से काम चल जायगा।	
बम्बई की पिछड़ी जातियां हैं-		
(१) बर्दा	(१३) मवची	
(२) बवचा	(१४) नायक	
(३) भील	(१४) परधी	
(४) चोधरा	(१६) पटेलिया	
(४) इंका	(१७) पोमला	
(६) घोदिया	(१८) पोवारा	
(७) दुवला	(११) रथवा	
(८) गमटा	(२०) तद्वी भीख	
(१) गोंड	(२१) ठाकुर	
(१०) करोदी (कटकरी)	(२२) बलवाई	
(११) कोंकना	(२३) वर्ली	
(१२) कोली महादेव	(२४) वसवा	
७. श्रोडीसा में—		
(१) बगता	(११) सौरा (सवार)	
(२) बनजारी	(१२) उड़ांव	
(३) चें पू	(१३) संथाल	
(४) गड्बो	(१४) खड़िया	
(१) गोंड	(१∤) सु'ढा	
(६) जटपू	(१६) बनजारा	
(७) खोंड	(१७) बिंक्सिया	
(८) कोंडाडोरा	(१८) किसान	
(१) कोया	(१६) कोली	
(१०) परोजा	(२०) कोरा	

## पश्चिमी बंगाल में—

(१) बोटिया	(६) माघ
(२) चकमा	(७) स्रो
(३) কুকী	(८) उडांव
(४) लेपचा	( ६ ) संथाल
(३) सु'डा	(१०) टिपरा
<ol> <li>श्रासाम में निम्न जातियाँ हैं—</li> </ol>	
(१) कछारी	(१) देवरी
(२) बोरो-कछारी	(१०) श्रबोर
(३) राभा	(११) मिस्मी
(४) मिरी	(१२) डफला
(१) बालुङ्	(१३) सिङ्फो
(६) मिकिर	(१४) खम्प्ती
(७) गारो	(१४) नागा
(=) हजोन्फी	(१६) क्की

यह पिछड़ी जातियां दूर के घने जंगलों और जंगल से ढँके दुर्गम पहाड़ों में रहती हैं, जहां श्रव भी वाघ, हाथी और दूसरे श्वापद निद्व न्द्व विचरते हैं। जो पिछड़ी जातियां श्रपने प्रान्त में रहती हैं, शायद उनकी श्रोर घुमक्कड़ का ध्यान नहीं श्राकृष्ट हो, क्यों कि यात्रा चार छ सौ मील की भी न हो तों मजा क्या ? १००-१०० मील पर रहने वाले तो घर की मुर्गी साग बराबर हैं। लेकिन श्रासाम की पिछड़ी जातियों का श्राकर्षण भी कम नहीं होगा। श्रासाम की एक श्रोर उत्तरी बर्मा की दुर्गम पहाड़ी भूमि तथा पिछड़ी जातियां हैं, और दूसरी तरफ रहस्यमय तिब्बत है। स्वयं यहां की पिछड़ी जातियां एक रहस्य हैं। यहां नाना मानव वंशों का समागम है। इनमें कुछ उन जातियों से संबन्ध रखती हैं जो स्थाम (थाई) और कंबोज में बसती हैं; कुछ का संबन्ध तिब्बती जाति से हैं। जहां ब्रह्मपुत्र (जौहित्य) तिब्बत के गगनचुम्बी पर्वतों को तोड़-

कर पूरब से अपनी दिशा को एकदम दिशा की श्रोर मोड़ देती है, वहीं से यह जातियां श्रारम्भ होती हैं। इनमें कितनी ही जगहें हैं, जहां घनें जंगल हैं, वर्षा तथा गर्मी होती हैं। लेकिन कितनी ऐसी जगहें भी हैं, जहां जाड़ों में बर्फ पड़ा करती है। मिस्मी, मिकिर, नागा श्रादि जातियां तथा उनके पुराने सीधे-सादे रिवाज धुमक्कड़ का ध्यान श्राकृष्ट किये बिना नहीं रह सकते। हमारे दंश से बाहर भी इस तरह की पिछड़ी जातियां बिखरी पड़ी हुई हैं। जहां शासन धनिक वर्ग के हाथ में है, वहां श्राशा नहीं की जा सकती कि इस शताब्दी के श्रन्त तक भी ये जातियां श्रन्थ-कार से श्राधुनिक प्रकाश में श्रा सकेंगी।

मै यद नहीं कदता कि हमारे घुमकड़ विदेशी पिछड़ी जातियों में न जायं। यदि संभव हो तो मैं बहूंगा, वह ध्रुवकचीय एस्किमो लोगों के चमड़े के तम्बुओं में जायं, श्रीर उस देश की सदी का श्रनुभव प्राप्त करें, जहां की भूमि लाखों वर्षों से आज भी बर्फ बनी हुई है, जहां तापांक हिमबिन्दु से ऊपर उठना नहीं जानता । लेकिन मैं भारतीय घुम-कड़ को यह कहूँगा, कि हमारे देश की आरण्यक-जातियों में उसके साहस श्रीर जिज्ञासा के लिए कम चेत्र नहीं है। पिछडी जातियों में जाने वाले घ्रमक्कड़ को कुछ खास तैयारी करने की श्रावश्यकता होगी। भाषा न जानने पर भी ऐसे देशों में जाने में कितनी ही बातों का सुभीता होता है, जहां के लोग सभ्यता की अगली सीढ़ी पर पहुँच चुके हैं; किन्तु विछड़ी जातियों में बहुत बातों की सावधानी रखनी पड़ती है। सावधानी का मतलब यह नहीं कि श्रंप्रेजों की तरह वह भी पिस्तौल यन्दूक लेकर जायं। पिस्तील-बन्द्क पास रखने का मैं विरोधी नहीं हूं। धुमक्कड़ को यदि वन्य श्रीर भयानक जंगलों में जाना हो, तो श्रवश्य हथियार लेकर जाय। पिछड़ी जातियों में जानेवाले को वैसे भी श्रच्छा निशानची होना चाहिए, इसके लिए चांदमारी में कुछ समय देना चाहिए। वन्यमानवों को तो उन्हें अपने प्रेम श्रीर सहानुभृति से जीतना होगा। अम या संदेह वश यदि खतरे में पड़ना हो, तो उसकी पर्वाह नहीं। वन्यजातियां भी अपिरिमित में श्री भावना से पराजित होती हैं। हथियार का अभ्यास सिर्फ इसीलिए आवश्यक है कि घुमक्कड़ को अपने इन बन्धुओं के साथ शिकार में जाना पड़ेगा। पिछड़ी जातियों में जानेवाले को उनके सामा-जिक जीवन में शामिल होने की बड़ी आवश्यकता है। उनके हरेक उत्सव, पर्व तथा दूसरे दुखः सुख के अवसरों पर घुमक्कड़ को एकात्मता दिखानी होगी। हो सकता है, आरंभ में अधिक लज्जाशील जातियों में फोटो कैमरे का उपयोग अच्छा न हो, किन्तु अधिक परिचय हो जाने पर हर्ज नहीं होगा। घुमक्कड़ को यह भी ख्याल रखना चाहिए, कि वहाँ की घड़ी बीमी होती है, काम के लिए समय अधिक लगता है।

श्रासाम की वन्यजातियों में जाने के लिए भाषा का ज्ञान भी श्राव-रयक है। श्रासाम के शिवसागर, तेजपुर, ग्वालपाड़ा श्रादि छोटे-बड़े सभी नगरों में हिंदीभाषी निवास करते हैं। वहाँ जाकर इन जातियों के बारे में ज्ञातब्य बातें जानी जा सकती हैं। श्रंग्रेजों की लिखी पुस्तकों से भी भूमि, लोग, रीति-रिवाज तथा भाषा के बारे में कितनी ही बातें जानी जा सकती हैं। लेकिन स्मरण रखना चाहिए, स्थान पर जा श्रपने उन बन्धुश्रों से जितना जानने का मौका मिलेगा, उतना दूसरी तरह से नहीं।

पिछड़ी जातियों के पास जीवनीपयोगी सामग्री जमा करने के साधन पुराने होते हैं। वहाँ उद्योग-धंधे नहीं होते, इसीलिए वह ऐसी जगहों पर ही जीवित रह सकती हैं, जहाँ प्रकृति प्राकृतिक रूप में भोजन-छाजन देने में उदार है, इसीलिए वह सुन्दर-से-सुन्दर श्रारण्यक श्रीर पार्वत्य- हरयों के बीच में वास करती हैं। घुमकड़ इन प्राकृतिक सुषमाश्रों का स्वयं श्रानन्द ले सकता है श्रीर श्रपनी लेखनी तथा त्लिका द्वारा दूसरों को भी दिला सकता है। घुमकड़ को पहली बात जो ध्यान रखनी

१ हरन, मिल्स, हडसन ग्रादि की पुस्तकें, जिन्हें श्रासाम सरकार ने प्रकाशित किया।

है, वह है समानता का भाव-श्रर्थात् उन लोगों में समान रूप से घुल-मिल जाने का प्रयत्न करना। शारीरिक मेहनत का वहाँ भी उपयोग हो सकता है. किन्तु वह जीविका कमाने के लिए उतना नहीं, जितना कि आत्मीयतास्थापित करने के लिए। नृत्य श्रीर वाद्य यह दो चीजें ऐसी हैं, जो सबसे जरुदी घुमनमड़ को श्रात्मीय बना सकती हैं। इन लोगों में नृत्य, वाद्य श्रीर संगीत श्वास की तरह जीवन के श्रीभेनन श्रंग हैं। वंशीवाले घुमक्दड़ को पूरी बन्धुता स्थापित करने के लिए दो दिन की श्रावश्यकता होगी। यद्यपि सभ्यता का मानदंड सभी जातियों का एक-सा नहीं है श्रीर एक जगह का सभ्यता-मानदंड सभी जगह मान्य नहीं हुआ करता; इसका यह अर्थ नहीं कि उसकी हर समय अवहेलना की जाय: तो भी सभ्य जातियों में जाने पर उनका श्रनुसरण श्रनुकरणीय है। यदि कोई यूरोपीय जूठे प्याले में चम्मच डालकर उससे फिर चीनी निकालने लगता है, तो हमारे शुद्धिवादी भाई नाक-भौ सिकोइते हैं। यूरोपीय पुरुष को यह समझना मुश्किल नहीं है, क्योंकि चिकित्सा-विज्ञान में जुरु के संपर्क को हानिकर बतलाया गया है। इसी तरह हमारे सम्य भारतीय भी कितनी ही बार भही गलती करते हैं, जिसे देखकर यूरोपीय पुरुष को घृणा हो जाती है; जूठ का विचार रखते हुए भी वह कान श्रौर नाक के मल की श्रोर ध्यान नहीं देते । लोगों के सामने दांत में श्रंगुली डाल के खरिका करते हैं. यह पश्चिम के भद्रसमाज में बहत बुरा सममा जाता है। इसी तरह हमारे लोग नाक या ग्रांख पोंछने के लिए रूमाल का इस्तेमाल नहीं करते, श्रीर उसके लिए हाथ को ही पर्याप्त समसते हैं, श्रथवा बहुत हुआ तो उनकी घोती, साड़ी का कोना ही रूमाल का काम देता है। यह बातें शुद्धिवाद के विरुद्ध हैं।

पिछड़ी जातियों के भी कितने ही रीति-रिवाज हो सकते हैं, जो हमारे यहाँ से विरुद्ध हों; लेकिन ऐसे भी नियम हो सकते हैं, जो हमारी श्रपेश श्रविक शुद्धता श्रीर स्वास्थ्य के श्रनुकूल हों। रीति-रिवाजों की स्थापना में सर्वेदा कोई पक्का तर्क काम नहीं करता। श्रज्ञात शक्तियों के कोष का भय कभी शुद्धि के ख्याल में काम करता है, कभी किसी अज्ञात भय का श्रातंक। नवीन स्थान में जाने पर यह गुर ठीक हैं कि लोगों को जैसा करते देखो, उसकी नकल तुम भी करने लगो। ऐसा करके हम उनको श्रपनी तरफ श्राकृष्ट करेंगे श्रीर बहुत देर नहीं होगी, वह श्रपने हृदय को हमारे लिए खोल देंगे।

वन्यजातियों में जानेवाला घमकड केवल उन्हें कुछ दे ही नहीं सकता. बल्कि उनसे कितनी ही वस्तुएं ले भी सकता है। उसकी सबसे श्रच्छी देन हैं दवाइयां. जिन्हें श्रपने पास श्रवश्य रखना श्रौर समय-समय पर श्रपनी व्यावहारिक बुद्धि से प्रयोग करना चाहिए। यूरोपीय क्रोग शीशे की मनियाँ. गुरियों श्रीर मालाश्रों को ले जाकर बाँटते हैं। जिसको एक-दो दिन रहना है, उसका काम इस तरह चल सकता है। घुमक्कड़ यदि मानव-वंश, मानव-तत्व का कामचलाऊ ज्ञान रखता है, नृतत्व के बारे में रुचि रखता है, तो वहाँ से बहत-सी वैज्ञानिक महत्व की चीजें प्राप्त कर सकता है। स्मरण रखना चाहिए कि प्रागैतिहासिक मानव-इतिहास का परिज्ञान करने के लिए इनकी माषा श्रीर कारीगरी बहुत सद्दायक सिंद हुई है। वमक्कड़ मानव-तत्व की समस्यात्रों का विशेषतः अनु-शीलन करके उनके बारे में देश को बतला सकता है, उनकी भाषा की खोज करके भाषा-विज्ञान के संबंध में कितने ही नये तत्वों को द्वांड निकाल सकता है। जनकला तो इन जातियों की सबसे सुन्दर चीज है, वह सिर्फ देखने-सुनने में ही रोचक नहीं है, बिल्क संभव है. उन से हमारी सभ्यता और सांस्कृतिक कला को भी कोई नई चीज मिले।

वन्यजातियों से एकरूपता स्थापित करने के लिए एक अंग्रेज विद्वान ने उन्हीं की जड़की ब्याह ली। घुमक्कड़ के लिए विवाह सबसे खरी चीज है, इसलिए मैं सममता हूँ, इस सस्ते हथियार को इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। यदि घुमक्कड़ को अधिक एक बनने की चाह है, तो वह वन्यजातियों की पर्णंकृटी में रह सकता है, उनके भोजन से तृप्ति प्राप्त कर सकता है, फिर एकतापादन के लिए ब्याह करने की आवश्य-

कता नहीं। घुमक्कड़ ने सदा चलते रहने का व्रत लिया है, वह कहाँ-कहाँ व्याह करके आत्मीयता स्थापित करता फिरेगा ? वह अपार सहातु-भूति, बुद्ध के शब्दों में —अपिरिमित मैत्री—तथा उनके जीवन या जन-कला में प्रवीणता प्राप्त करके ऐसी आत्मीयता स्थापित कर सकेगा, जैसी दूसरी तरह संभव नहीं है। कहीं वह सायंकाल को किसी गाँव में चटाई पर बैठा किसी बुद्धा से युगों से दुहराई जाती कथा सुन रहा है; कड़ीं स्वच्छंदता और निर्मीकता की साकार मूर्ति वहाँ के तहण्य-तहिण्यों की मंडली में वंशी बजा उनके गीतों को दुहरा रहा है; वह है ढंग जिससे कि वह अपने को उनसे अभिन्न साबित कर सकेगा। छ महीने-वर्ष भर रह जाने पर पारन्यो घुमक्कड़ दुनिया को बहुत-सी चीजें उनके बारे में दे सकता है।

श्रादमी जब श्रस्तूती प्रकृति श्रोः उसकी श्रोरस संतानों में जाकर महीनों श्रोर साल बिताता है, उस वक्त भी उसे जीवन का श्रानन्द श्राता है। वह हर रोज नये-नये श्राविष्कार करता है। कभी इतिहास, कभी नृवंश, कभी भाषा श्रोर कभी दूसरे किसी विषय में नई खोज करता है। जब वह वहाँ से, समय श्रोर स्थान दोनों में दूर चला जाता है, तो उम समय पुरानी स्मृतियां बड़ी मधुर थाती बनकर पास रहती हैं। वह यद्यपि उसके लिए उसके जीवन के साथ समाप्त हो जायंगी, किन्तु मौन तपस्या करना जिनका लक्ष्य नहीं है, वह उन्हें श्रंकित कर जायंगे, श्रोर फिर लाखों जनों के सम्मुख वह मधुर दश्य उपस्थित होते रहेंगे।

वन्यजातियों में घूमना, मनन, श्रध्ययन करना एक बहुत रोचक जीवन है। भारत में इस काम के लिए काफी प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ों की श्रावस्यकता है। हमारे कितने ही तरुण न्यर्थ का जीवन-यापन करते हैं। उस जीवन को न्यर्थ ही कहा जायगा, जिससे श्रादमी न स्वयं लाभ उठाता है न समाज को ही लाभ पहुंचाता है। जिसके भीतर घुमक्कड़ी का छोटा-मोटा भी श्रंकुर है, उससे तो श्राशा नहीं की जा सकती, कि वह श्रपने जीवन को इस तरह बेकार करेगा। किन्तु बाज वक्त घुमक्कड़ी

की महिमा को ब्राइमी जान नहीं पाता श्रीर जीवन को मुक्त में खो देवा है। श्राज दो तरुणों की स्मृति मेरे सामने है। दोनों ने पच्चीस वर्ष की ऋाय से पहले ही ऋपने हाथों ऋपने जीवन को समाप्त कर दिया। उनमें एक इतिहास श्रीर संस्कृत का श्रसाधारण मेधावी विद्यार्थी थाः एक कालेज में प्रोफेसर बनकर गया था। उसे वर्तमान से संतोष नहीं था. और चाहता था और भी श्रपने ज्ञान श्रीर योग्यता की बढ़ाएं। राजनीति में श्रागे बढ़े हुए विचार उसके लिए हानिकारक साबित हुए श्रौर नौकरी छोड़कर चला जाना पड़ा। उसके पिता गरीय नहीं थे. लेकिन पिता की पेंशन पर वह जीवन-यापन करना अपने लिए परम अनुचित सममता था। दरवाजे उसे उतने ही मालूम थे. जितने कि दीख पड़ते थे। तरुणों के लिए श्रीर भी ख़ल सकने वाले दरवाजे हैं, इसका उसे पता नहीं था। वह जान सकता था, श्रासाम के कोने में एक मिसमी जाति है या मिणपुर में स्त्री-प्रधान जाति है, जो सुरत में मंगील, भाषा में स्यामी श्रीर धर्म में पक्की वैष्णव है। वहाँ उसे मासिक सौ-डेडसौ की ग्रावश्यकता नहीं होगी, श्रोर न निराश होकर श्रपनी जीवन-लीला समाप्त करने की श्रावश्यकता। सिर्फ हाथ-पैर हिलाने-इलाने की त्रावश्यकताथी, फिर एक मिसमी वा मणिपुरी प्रामीख वरुण के सुखी और निश्चिन्त जीवन को अपनाकर वह आगे बढ़ सकता, अपने ज्ञान को भी बढ़ा सकता था, दुनिया को भी कितनी ही नई बातें बतला सकता था । क्या श्रावश्यकता थी उसको श्रपने जीवन को इस मकार फेंकने की ? इतने उपयोगी जीवन को इस तरह गवाना क्या कभी समकदारी का काम समका जा सकता है ?

दूसरा तरुण राजनीति का तेज विद्यार्थी था श्रीर साधारण नहीं श्रसाधारण । उसमें दुद्धिवाद श्रीर श्रादशंवाद का सुन्दर मिश्रण था। एम० ए० को बहुत श्रच्छे नंबरों से पास किया था। वह स्वस्थ सुन्दर श्रीर विनीत था। उसका घर भी सुखी था। होश संभालते ही उसने बड़ी-बड़ी करूपनाएं शुरू की थीं। ज्ञान-श्रजन तो श्रपने लघु- जीवन के चर्ण-चर्ण में उसने किया था. लेकिन उसने भी एक दिन भ्रापने जीवन का श्रन्त पोटासियम साइनाइड खाके कर दिया। कहते हैं. उसका कारण प्रेम हुन्ना था। लेकिन वह प्रेमी कैसा जी प्रेम के लिए ४-७ वर्ष की भी प्रतीचा न कर सके, श्रीर प्रेम कैसा जो श्रादमी की विवेक-बुद्धि पर परदा डाल दे. सारी प्रतिभा को बेकार कर दे? यदि उसने जीवन को बेकार ही समका था, तो कम-से-कम उसे किसी ऐसे काम के लिए देना चाहिए था, जिससे दूसरों का उपकार होता। जब अपने करते को फेंकना ही है, तो श्राग में न फेंककर किसी श्रादमी को क्यों न दे दें, जिसमें उसकी सर्दी-गर्भी से रहा हो सके। तह्या-तरुणियां कितनी ही बार ऐसी बेबकूफी कर बैठते हैं. श्रीर समाज के बिए. देश के लिए. विद्या के लिए उपयोगी जीवन को कौड़ी के मोल नहीं, बिना मोल फेंक देते हैं। क्या वह तरुण अपने राजनीति श्रीर त्रर्थशास्त्र के श्रसाधारण ज्ञान,श्रपनी लगन, निर्भीकता तथा साहस को लेकर किसी पिछड़ी जाति में. किसी श्रष्ठते प्रदेश में नहीं जा सकता था ? यह कायरता थी, या इसे पागलपन कहना चाहिए-शत्रु से बिना लोहा लिये उसने हथियार डाल दिया। पोटासियम साइनाइड बहुत सस्ता है, रेल के नीचे कटना या पानी में कूदना बहुत श्रासान है. खोपड़ी में एक गोली खाली कर देना भी एक चवन्नी की बात है, लेकिन इटकर अपनी प्रतिद्वनद्वी शक्तियों से मुकाबला करना कठिन है। तरुख से आशा की जा सकती है, कि उसमें दोनों गुण होंगे। मैं समकता हूं, घुमक्कड़ी धर्म के अनुयायी तथा इस शास्त्र के पाठक कभी इस तरह की बेव-कुफी नहीं करेंगे, जैसा कि उक्त दोनों तरुणों ने किया। एक को तो मैं कोई परामर्श नहीं दे सकता था. यद्यपि उसका पत्र रूस में पहुँचा था. किन्तु मेरे लौटने से पहले ही वह संसार छोड़ चुका था। मैं मानता हैं, खास परिस्थिति में जब जीवन का कोई उपयोग न हो, श्रीर मरकर ही वह कुछ उपकार कर सकता हो तो मनुष्य को श्राने जीवन को खत्म कर देने का अधिकार है। ऐसी आत्म-हत्या किसी नैतिक कानून के विरुद्ध नहीं, लेकिन ऐसी स्थिति हो, तब न ? दूसरा तरुण मेरे भारत लोटने तक जीवित था, यदि वह मुक्तसे मिला होता या मुक्ते किसी तरह पतालग गया होता, तो मैं ऐसी बेवकूफी न करने देता। विद्या, स्वास्थ्य, तारुण्य, श्रादर्शवाद इनमें से एक भी दुर्लभ है, श्रीर जिसमें सारे हों, ऐसे जीवन को इस तरह फेंकना क्या हृदयहीनता की बात नहीं है ? श्रासली घुमक्कड़ मृत्यु से नहीं हरता, मृत्यु की छाया से वह खेलता है। लेकिन हमेशा उसका लच्य रहता है, मृत्यु को परास्त करना—वह श्रपनी मृत्यु द्वारा उस मृत्यु को परास्त करना है।

## घुमक्कड़ जातियों में

दुनिया के सभी देशों श्रौर जातियों में जिस तरह घुमा जा सकता है, उसी तरह वन्य श्रीर घुमकड़ जातियों में नहीं वृमा जा सकता, इसी-लिए यहां हमें ऐसे घुमकड़ों के लिए विशेष तौर से लिखने की श्रावस्य-कता पड़ी। भावी घुमकडों को शायद यह तो पता होगा कि हमारे देश की तरह दूसरे देशों में भी कुछ ऐसी जातियां हैं. जिनका न कहीं एक जगह घर है श्रीर न कोई एक गांव। यह कहना चाहिए कि वे लोग अपने गांव और घर को अपने कन्धों पर उठाए चलते हैं। ऐसी घुमक्कड़ जातियों के लोगों की संख्या हमारे देश में लाखों है श्रीर यूरोप में भी वह बढ़ी संख्या में रहती हैं। जाड़ा हो या गर्भी श्रथवा बरसात वे लोग चलते ही रहते हैं। जीविका के लिए कुछ करना चाहिए, इसलिए वह चौबीसों घंटे वृम नहीं सकते। उन्हें बीच बीच में कहीं कहीं पांच-दस दिन के लिए ठहरना पड़ता है। हमारे तरुगों ने अपने गांवों में कभी-कभी इन लोगों को देखा होगा। किसी वृत्त के नीचे उंची जगह देखकर वह श्रपनी सिरकी लगाते हैं। युरोप में उनके पास तम्बू या छोलदारी हम्रा करती है श्रौर हमारे यहा सिरिकयां। हमारे यहां की बरसात में कपड़े के तम्बू बहुत श्रच्छी किस्म के होने पर ही काम दे सकते हैं. नहीं तो वह पानी छानने का काम करेंगे। उसकी जगह हमारे यहां सिरकी को छोलदारी के तौर पर टांग दिया जाता है। सिरकी सरकंडे का सिरा है, जो सरकंडे की अपेता कई गुनी हल्की होती है। एक लाभ इसमें यह है कि सिरकी की बनी छोलदारी कपड़े की श्रपेत्ता बहत हल्की होती है। पानी इसमें घुस नहीं सकता. इसलिए जब तक वह श्रादमी के सिर पर है भीगने का कोई हर नहीं। लचीखी होने से

यह जल्दी टूटने वाली भी नहीं है और पचकने वाली होने से एक दूसरे से दबकर चिपक जाती है और पानी का बूंद दरार से पार नहीं जा सकता। इन सब गुर्णों के होते हुए भी सिरकी बहुत सस्ती है। उसके बनाने में भी श्रधिक कौशल की श्रावश्यकता नहीं, इसलिए धुमनकड़ जातियां स्वयं श्रपनी सिरकी तैयार कर लेती हैं। इस प्रकार पाठक बह भी समझ सकते हैं कि इन धुमक्कड़ों को क्यों 'सिरकीवाला' कहते हैं।

बरसात का दिन है, वर्षा कई दिनों से छूटने का नाम नहीं ले रही है। घर के द्वार पर कीचड़ का ठिकाना नहीं है. जिसमें गोबर मिलकर भौर भी बरी तरह सब रहा है और उसके भोतर पैर रखकर चलते रहने पर चार-छ दिन में श्रंगुबियों के पोर सड़ने खगते हैं, इसलिए गांव के किसान ऊंचे ऊंचे पौवे ( खड़ाऊं ) पहनते हैं। वही पौवे जो हमारे यहां गंबारी चीज समके जाते हैं, और नगर या गांव के भद्र पुरुष भी उसे पह मना श्रसभ्यता का चिन्ह सममते हैं, किंतु जापान में गांव हीनहीं तो क्यो जैसे महानगर में चलते पुरुष ही नहीं भद्रकुलीना महिलाओं के पैरों में शोभा देता है। वह पौवा लगाए सहक पर खट्-खट् करती चली जाती हैं। वहां इसे कोई श्रभद्र चिन्ह नहीं समफता। हां, तो ऐसी बदली के दिनों में घुमक्कड़ बनने की इच्छा रखने वाले तरुखों में बहुत कम होंगे, जो घर से बाहर निकलने की इच्छा रखते हों - कम-से-कम स्वेच्छा से तो बह बाहर नहीं जाना चाहेंगे। लेकिन ऐसीही सप्ताह वाली बदली में गांव के बाहर किसी वृत्त के नीचे या पोखरे के भिड़े पर श्राप सिरकी वालों को अपनी सिरकी के भीतर बेठे देखेंगे। इसवर्षा-बूदी में चार हाथलम्बी, तीन हाथ चौड़ी सिरकी के घरों में दो-तीन परिवार बैठे होंगे। उनको श्रपनी भैंस के चारे की चिन्ता बहुत नहीं तो थोड़ी होगी ही।

सिरकीवाले श्रधिकतर मैंस पसन्द करते हैं, कोई-कोई गधा भी। राजपूताना श्रीर बुंदेलखण्ड में घूमनेवाले घुमक्कड़ लोहार ही ऐसे हैं, जो श्रपनी एकवैलिया गाड़ी रखते हैं। सिरकीवालों की भैंस दूध के लिए नहीं पाली जाती। मैंने तो उनके पास दूध देनेवाली भैंस कभी नहीं देखी। वह प्रायः बहिला भैंस रखते हैं, भैंसा भी उनके पास कम ही देखा जाता है । बहिला भैंस पसन्द करने का कारण उसका सस्तापन है। बरसात में चारेकी उतनी कठिनाई नहीं होती, घास जहां-तहां उगी रहती है. जिसके चराने-काटने में किसान विरोध नहीं करते । किन्तु भैंस को खुला तो नहीं छोड़ा जा सकता, कहीं किसान के खेत में चली जाय तो ? खेर, सिरकीवाला चाहे श्रपनी भैंस, गधे, कुत्ते की परवाह न करे, किन्त उसे बीबी-बच्चों की तो परवाह करनी है-वह प्रथम-द्वितीय श्रे शी का घुमक्कड़ नहीं है. कि परिवार रखने को पाप समसे । कई दिन बदली लगी रहने पर उसको चिन्ता भी हो सकती है, क्योंकि उसके पास न बेंक की चेक-बही है, न घर या खेत है, न कोई दूसरी जायदाद ही. जिस पर कर्ज मिल सके । ईमानदार है या बेईमान, इसकी बात छोड़िए । ईमानदार होने पर भी ऐसे ब्रादमी को कौन विश्वास करके कर्ज देगा, जो श्राज यहां है तो कल दस कीस पर श्रीर पांच महीने बाद युक्तप्रांत से निकलकर बंगाल में पहुंच जाता है। सिरकीवाले की तो रोज कुँ त्रा खोदकर रोज पानी पीना है, इसलिए उसकी चिंता भी रोज-रोज की है। सिरकी में चावल-श्राटा रहने पर भी उसे ई धन की चिंता रहती है। बरसात में सुखा ई धन कहां से आए ? घर तो नहीं कि सुखा कण्डा रखा है। कहीं से सुखी डाली चुरा-छिपाकर तोइता है. तो चल्हे में आग जलती है।

सिरकीवाले के अर्थशास्त्र को सममना किसी दिमागदार के लिए भी सुश्किल है। एक-एक सिरकी में पांच-पांच छु-छु व्यक्तियों का परिवार है—सिरकीवाले व्याह होते ही बाप से अपनी सिरकी अलग कर लेते हैं, तो भी कैसे छु के परिवार का गुजारा होता है? उनकी आवश्यकताएं बहुत कम हें, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु पेट के लिए दो हज़ार कलोरी आहार तो चाहिए, जिसमें वह चल फिर सके, हाथ से काम कर सके। उसकी जीविका के साधनों में किसी के पास एक बंदर और एक बंदरी

है, तो किसीके पास बंदर श्रीर बकरा, श्रीर किसीके पास भालू या सांप। कुछ बांस या बेंत की टोकरी बनाकर बेचने के नाम पर भीख मांगते हैं, तो कुछ ने नट का काम संभाला है। नट पहले नाटक-श्रभिनय करने वालों को कहा जाता था, लेकिन हमारे यह नट कोई नाटक करते दिखलाई नहीं पड़ते, हां, कसरत या न्यायाम की कलबाजी जरूर दिखलाते हैं। बरसात में किसी-किसी गांव में यदि नट एक-दो महीने के लिए टहर जाते हैं, तो वहां श्रखाड़ा तैयार हो जाता है। गांव के नौजवान खलीफा से कुरती लड़ना सीखते हैं। पहले गांवों की श्राबादी कम थी, गाय-भेंसें बहुत पाली जाती थीं, क्योंकि जंगल चारों श्रोर था; उस समय नौजवान श्रखाड़िये का बाप खलीफा को एक भेंस विदाई दे देता था, लेकिन श्राज हजार रुपया की भेंस कीन देने को तैयार है ?

उनकी स्त्रियां गोदना गोदती हैं। पहले गोदने को सौभाग्य का चिन्ह सममा जाताथा, श्रव तो जान पड़ता है वह कुछ दिनों में छूट जायगा। गोदना गोदने के लिए उन्हें कुछ श्रनाज मिल जाताथा, श्राज श्रनाज की जिस तरह की मंहगाई है, उससे जान पड़ता है कितने ही गृहस्थ श्रनाज की जगह पैता देना श्रधिक पसंद करेंगे।

ख्याल कीजिए, सात दिनों से बदली चली आई है। घर की खर्ची खरम हो चुकी है। सिरकीवाला मना रहा है—हे देव! थोड़ा बरसना बन्द करों कि में बन्दर-बंदरिया को बाहर ले जाऊं और पांच मुंह के अन्न-दाना का उपाय करूं। सचमुच बूंदाबादी कम हुई नहीं कि मदारी अपने बंदर-बंदरियाको लेकर डमरू बजाते गिलयों या सड़कों में निकल पड़ा। तमाशा बार-बार देखा होने पर भी लोग फिर उसे देखने के लिए तैयार हो जाते हैं। लोगों के लिए मनोरंजन का और कोई साधन नहीं है। तमाशे के बदले में कहीं पैसा, कहीं अन्न, कहीं पुराना कपड़ा हाथ आ जाता है। अन्धेरा होते-होते मदारी अपनी सिरकी में पहुंचता है। यदि हो सके तो सिरकी की देखभाल किसी बुढ़िया को देकर स्त्रियां भी निकल जाती हैं। शाम को जमीन में खोदे चूल्हे में

ईं धन जला दिया जाता है, सिरकी के बांस से लटकती हंडिया उतार कर चढ़ा दी जाती हैं, फिर सबसे बुरे तरह का श्रन्न डालकर उसे भोजन के रूप में तेयार किया जाने लगता है। उसकी गन्ध नाक में पड़ते ही बच्चों की जीभ से पानी टपकता है।

सिरकीवालों का जीवन कितना नीरस है, लेकिन तब भी वह उसे अपनाये हुए हैं। क्या करें, बाप-दादों के समय से उन्होंने ऐसा ही जीवन देखा है। लेकिन यह न समिमए कि उनके जीवन की सारी घडियाँ नीरस हैं। नहीं, कभी उनमें जवानी रहती है, ब्याह यद्यपि वे श्रपनी जाति के भीतर करते हैं. किन्त तहण-तहणी एक दसरे से परि-चित होते हैं श्रोर बहत करके ब्याह इच्छानुरूप होता है। वह प्रण्य-कलह भी करते हैं और प्रणय-मिलन भी। वह प्रेम के गीत भी गाते हैं. श्रीर कई परिवारों के इकटा होने पर नत्य भी रचते हैं। बाजे के लिए क्या चिन्ता ? सपेरे भी तो सिरकीवाले हैं, जिनकी महबर पर साँप नाचते हैं, उस पर क्या श्रादमी नहीं नाच सबते ? दुख श्रौर चिंता की घडियां भले ही बहत लम्बी हों, किन्तु उन्हें भुलाने के भी उनके पास बहत-से साधन हैं। युगों से सिरकी वाले गीत गाते श्राये हैं। बरसों से रौंदी जाती भूमियों के निवासी उनके परिचित हैं। उनके पास कथा श्रीर बात के लिए सामग्री की कमी नहीं। किसी तरह श्रपनी कठिना-इयों को भुलाकर वह जीने का रास्ता निकाल ही लेते हैं। यह हैं हमारे देश की घुमकड़ जातियां, जिनमें बनजारे भी सम्मिखित हैं। इसे भूलना नहीं चाहिए, यह बनजारे किसी समय वाणिज्य का काम करते थे. अपना माल नहीं व्यापारी का माल वे अपने बैलों या दूसरे जान-वरों पर लादकर एक जगह से दसरी जगह ले जाते थे। इसके लिए तो उनको लदहारा कहना चाहिए, लेकिन कहा जाता था बनजारा ।

भारतवर्ष में घुमकद जातियों के भाग्य में दुःख-ही-दुःख बदा है। जनसंख्या बदने के कारण बस्ती घनी हो गई; जीवन-संघर्ष बद गया; किसान का भाग्य फूट गया, फिर हमारे सिरकी वार्लों को क्या श्राशा हो सकती है ! यूरोप में भी सिरकी वाजों की श्रवस्था कुछ ही श्रच्छी है। जो भेद है. उसका कारण है वहाँ श्राबादी का उतनी श्रधिक संख्या में न बढ़ना, जीवन-तल का ऊँचा होना श्रीर घुमक्कड़ जातियों का श्रिधिक कर्मपरायण होना । यह सुनकर श्राश्चर्य करने की ज़रूरत नहीं है कि युरोप के घुमकड़ वही सिरकीवाले हैं जिनके भाई-बन्द भारत, ईरान श्रीर मध्य-एसिया में मौजूद हैं, श्रीर जो किसी कारण श्रपनी मात्रभमि भारत को न लौटकर दूर-ही-दूर चलते गये । ये अपने को 'रोम' कहते हैं. जो वस्तुतः 'डोम' का अपभ्रंश है। भारत से गये उन्हें काफी समय हो गया, यूरोप में पनदृद्वीं सदी में उनके पहुँच जाने का पता लगता है। श्राज उन्हें पता नहीं कि वह कभी भारत से श्राये थे। 'रोमनी' या 'रोम' से वे इतना ही समक सकते हैं. कि उनका रोम नगर से कोई सम्बन्ध है। इङ्गलैएड में उन्हें 'जिपसी' कहते हैं, जिससे अम होता है कि इजिप्ट ( मिश्र ) से उनका कोई सम्बन्ध है। वस्तुतः उनका न रोम से सम्बन्ध है न इजिप्ट से। रूस में उन्हें 'सिगान' कहते हैं। श्रनुसंघान से पता लगा है, कि रोमनी लोग भारत से न्यारहवीं-बारहवीं सदी में टूटकर सदा के लिए श्रलग हुए। सात सौ बरस के भीतर वे बिलकुल भूल गए, कि उनका भारत से कोई सम्बन्ध है। श्राज भी उनमें बहुत ऐसे मिलते हैं, जो रंगरूप में बिलकुल भारतीय हैं। हमारे एक मित्र रोमनी बनकर इङ्गलैएड भी चले गये श्रीर किसीने उनके नकली पासपोर्ट की छानबीन नहीं की। तो भी यदि भाषा-शास्त्रियों ने परिश्रम न किया होता, तो कोई विश्वास नहीं करता, कि रोमनी वस्तुतः भारतीय सिरकीवाले हैं। यूरोप में जाकर भी वह वही श्रपना व्यवसाय - नाच-गाना बन्दर-भाल नचाना-करते हैं। घोडफेरी श्रीर हाथ देखने की कला में भी उन्होंने ख्याति प्राप्त की है। भाषा-शास्त्रियों ने एक नहीं सेकड़ों हिन्दी के शब्द जैसे के तैसे उनकी भाषा में देखकर फैसला कर दिया. कि वह भारतीय हैं। पाठकों को प्रत्यन्त दिखलाने के लिए हम यहां उनकी भाषा के कुछ शब्द देते हैं-

श्रमरो—हमरो	पानी-पानी
श्रनेस्—ग्रानेस्	पुछे <b>- पु</b> छे
श्रंदलो—श्रानल	फुरान-पुरान
उचेस—ऊंचे	फूरो-बूढ़ो
काइ—काँई (क्यों)	फेन-बेन (बहिन)
कतिर-कहां (केहितीर)	फेने—भने
किंदलो, वि-किनल, वि(वेंचा)	बकरोबकरा
काको-काका (चाचा)	बन्या-पण्य (शाजा), दूकान
काकी—काकी (चाची)	बोबाबेस्-भुखाबेस् (श्रवधी)
कुच—कुछ (बहुत)	ब्बाच-ब्याह
गव्— गाँव	मनुस—मानुस
गवरो—गँवारो	मस — मांस
गिनेस—गिनेस ( ग्रवधी )	माछो — माछो
चार—चारा (घास)	याग—श्राग
च्योर—चोर	याख—श्राँख
थुद—दूघ	रोवेरोवै ( भोजपुरी )
थुव—धुवाँ	रुपए-रुपैया (जोल्तोइ)
तुमरो—तुमरो	रीच — रीछ
थूलो—दूलो ( मोटा, )	ससुई-सास, ससुई (भोजपुरी)
दुइ—दुइ (दो)	

ये हमारे भारतीय घुमक्कड़ हैं, जो पिछली सात शताब्दियों से भारत से बाहर चक्कर लगा रहे हैं। वहाँ सरकंड की सिरकी सुलभ नहीं थी, इसलिए उन्होंने कपड़े का चलता-फिरता घर स्वीकार किया। वहां घोड़ा श्राधक उपयोगी श्रीर सुलभ था, वह बर्फ की मार सह सकता था श्रीर श्रपने मालिक को जल्दी एक जगह से दूसरी जगह पहुँचा सकता था, साथ ही युरोप में घोड़ों की मांग भी श्राधक थी, इसलिए घोड़फेरी में सुभीता था; श्रीर हमारे रोमों ने श्रपना सामान ढोने के लिए घोड़ा-

गाड़ी को पसन्द किया। चाहे दिसम्बर, जनवरी, फरवरी की घोर वर्षा हो और चाहे वर्षा की कीचढ़, रोमनी बराबर एक जगह से दूसरी जगह यूमते रहते हैं । नृत्य श्रीर संगीत में उन्होंने पहले सस्तेपन श्रीर सुलभता के कारण प्रसिद्धि पाई श्रीर पीछे कलाकार के तौर पर भी उनका नाम हुआ। वह युरोपीयों की अपेचा काले होते हैं, हमारी अपेचा तो वह अधिक गोरे हैं, साथ ही उन्हें अधिक सुन्दरियों को पैदा करने का श्रेय भी दिया जाता है। अपने गीत और नृत्य के लिए रोमनियाँ जैसी प्रसिद्ध हैं. वैसी ही भाग्य भाखनें में भी वह प्रथम मानी जाती हैं। उनका भाग्य भाखना भीख मांगने का थांग है, यह देखते हुए भी लोग श्रपना हाथ उनके सामने कर ही देते हैं। हमारे देश में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद लड़का चुराने वालों का बहुत जोर देखा जाता है, लेकिन युरोप में रोमनी बहुत पहिले से बच्चा चुराने के लिए बदनाम थे। यद्यपि यूरोपीय रोमनियों का भारतीय सिरकी बालों की तरह बुरा हाल नहीं है. किन्तु तब भी वह अपने भाग्य को अपने घर के साथ कन्धे पर लिये चलते हैं। वहां भी रोज कमाना श्रीर रोज खाना उनका जीवन-नियम है। हां, घोड़े के क्रय-विक्रय तथा छोटी-मोटी चीज श्रीर खरीदते-बेचते हैं. इसलिए जीविका के कुछ श्रौर भी सहारे उनके पास हैं: लेकिन उनका जीवन नीरस होने पर भी एकदम नीरस नहीं कहा जा सकता। जिस तरह ये घुमकद राज्यों की सीमाओं को तोड़कर एक जगह से दुसरी जगह स्वच्छंद विचरते हैं, श्रौर जिस तरह उनके लिए न ऊधो का लेना न माधो का देना है, उसे देखकर कितनी ही बार दिल मचल जाता है। रूस के कालिदास पुश्किन तो एक बार श्रपने जीवन को उनके जीवन से बदलने के लिए तैयार हो गए थे। रोमनी की काली-काली बड़ी-बड़ी श्राँखें, उनके कोकिलकंठ, उनके मयूरपिच्छाकार केश-पाश ने यूरोप के न जाने कितने सामन्त-क्रमारों को बांध जिया। कितनों ने श्रपना विजास-महल छोड़ उनके तंबुश्रों का रास्ता स्वीकार किया। श्रवश्य रोमनी जीवन बिलकुल नीरस नहीं है। रोमनियों के साथ साथ घूमना हमारे घुमहाड़ों के लिए कम लालसा की चीज़ नहीं होगी। डर है, यूरोप में घुमन्त, जीवन को छोड़कर जिस तरह एक जगह से दूसरी जगह जाने की प्रवृत्ति बन्द हो रही है, उससे कहीं यह घुमन्त, जाति सर्वधा अपने अस्तित्व को खो न बेठे। एकाध भारतीयों ने रोमनी जीवन का आनन्द लिया है, लेकिन यह कहना ठीक नहीं होगा कि उन्होंने उनके जीवन को अधिक गहराई में उतरकर देखना चाहा। वस्तुतः पहले ही से कड़वे-मीठे के लिए तैयार तरुवा ही उनके डेरों का आनन्द ले सकते हैं। इतना तो स्पष्ट है, कि यूरोप में जहां-कहीं भी अभी रोमनी घुमन्त, बच रहे हैं, वह हमारे यहां के सिरकीवालों से अच्छी अवस्था में हैं। समाज में उनका स्थान नीचा होने पर भी वह उतना नीचा नहीं है, जितना हमारे यहां के सिरकीवालों का।

यहां श्रपने पड़ोसी तिब्बत के घुमन्तुश्रों के बारे में भी कुछ कह देना श्रनावश्यक न होगा। पहले-पहल जब मैं ११२६ में तिब्बत की भूमि में गया श्रौर मैंने वहां के घुमन्तुश्रों को देखा, तो उससे इतना आकृष्ट हुआ कि एक बार मन ने कहा—छोड़ो सब कुछ श्रौर हो जाश्रो इनके साथ। बहुत वर्षों तक मैं यही सममता रहा कि ग्रमी भी श्रव-सर हाथ से नहीं गया है। वह क्या चीज़ थी, जिसने मुक्ते उनकी तरफ श्राकृष्ट किया। यह घुमन्त् दिल्ली श्रीर मानसरीवर के बीच हर साल ही घूमा करते हैं, उनके लिए यह बच्चों का खेल है। कोई-कोई तो शिमला से चीन तक की दौड़ लगाते हैं, श्रीर सारी यात्रा उनकी अपने मन से पैदल हुआ करती है। साथ में परिवार होता है, लेकिन परिवार की संख्या नियंत्रित है, क्योंकि सभी भाइयों की एक ही पत्नी होती है। रहने के लिए कपड़े की पतली छोलदारी रहती है। श्रिधिक वर्षा वाले देश श्रीर काल से गुजरना नहीं पड़ता, इसलिए कपड़े की एकहरी छोजदारी पर्याप्त होती है। साथ में इधर-से-उधर बेचने की कुछ चीजें होती हैं। इनके ढोने के लिए सीधे-सादे दो-तीन गधे होते हैं, जिन्हें खिलाने-पिखाने के लिए घास-दाने की फिक्र नहीं रहती। हाँ, भेड़ियों श्रीर बघेरों से रचा करने के किए सावधानी रखनी पड़ती है. क्योंकि इन रवापदों के लिए गधे रसगुल्ले से कम मीठे नहीं होते। कितना हल्का सामान, कितना निरिचन्त जीवन और कितनी दूर तक की दौड़ ! १६२६ में में इस जीवन पर सुग्ध हुआ, श्रभी तक उसकी प्राप्ति में सफल न होने पर भी श्राज भी वह श्राकर्षण कम नहीं हुशा। एक घुमकड़ी-इच्छुक तरुए को एक मरतबे मैंने प्रोत्साहित किया था। वह विजायत जा बैरिस्टर हो आये थे और मेरे आकर्षक वर्णन को सुनकर उस वक्त ऐसे तैयार जान पड़े, गोया तिब्बत का ही रास्ता लेनेवाले हैं। ये तिब्बती घुमक्क अपने को खम्पा या ग्यग-खम्पा कहते हैं। इन्हें श्रार्थिक तौर से हम भारतीय सिरकीवालों से नहीं मिला सकते। पिछले साल एक खम्पा तरुण से घुमन्तू जीवन के बारे में बात हो रही थी। मैं भीतर से इसरत करते हुए भी बाहर से इस तरह के जीवन के कष्ट के बारे में कह रहा था। खम्पा तरुण ने कहा-"हाँ, जीवन तो श्रवश्य सुखकर नहीं है, किन्तु जो लोग घा बाँधकर गाँव में बस गए हैं, उनका जीवन भी श्रधिक श्राकर्षक नहीं मालूम होता। श्राकर्षक क्या, श्रपने को तो कष्टकर मालूम होता है। शिमला पहाड़ में कौन किसान है, जो चाय, चीनी, मक्खन श्रौर सुस्वादु श्रन्न खाता हो ? मानसरो-वर में कौन मेषपाल है, जो सिगरेट पीता हो, लेमन-जूप खाता हो ? इम कभी ऐसे स्थानों में रहते हैं, जहां मांस और मक्खन रोज खा सकते हैं, फिर शिमला या दिल्ली के इलाके में पहंचकर भी वहां के किसानों से अच्छा खाते हैं।

बात स्पष्ट थी। वह सम्पा तरुण श्रपने जीवन को किसी सुखपूर्ण श्रचल जीवन से बदलने के लिए तैयार नहीं था। यह उसके पैरों में था कि जब चाहे तब शिमला से चीन पहुँच जाय। रास्ते में कितने विचित्र-विचित्र पहाड़, पहले जंगलों से श्राच्छादित तुंग शेल, फिर उत्तंग हिमशिखर, तब चौड़े उन्चे मैदानवाली वृच्चनस्पति-शून्य तिब्बत की भूमि में कई सौ मील फैला बह्मपुत्र का कछार! इस तरह भूमि नापते

चीन में पहुँचना ! घुमनकड़ी में दूसरे सुभीते हो सकते हैं, दिल मिल जाने पर उनके साथ दृढ़ बन्धुता स्थापित हो सकती है; किन्तु ये तिब्बत के ही घुमनकड़ हैं, जो पूरी तौर से दूसरे घुमनकड़ को अपने परिवार का ज्यक्ति बना, सगा भाई स्वीकार कर सकते हैं—सगा भाई वही तो है, जिसके साथ सम्मिलित विवाह हो सके।

हमने नम्नूने के तौर पर सिर्फ तीन देशों की घुमक्कड़ जातियों का जीवन वर्णित किया। दुनिया के और देशों में भी ऐसी कितनी ही जातियां हैं। इन घुमक्कड़ों के घूमते परिवार के साथ साल-दो-साल बिता देना घाटे का सौदा नहीं है। उनके जीवन को दूर से देखकर पुरिकन ने कविता लिखी थी। फिर उनमें रहने वाला और भी अच्छीकविता लिख सकता है, यदि उसको रस आ जाय। भिन्न-भिन्न देशों के घुमन्तुओं पर कितने ही लेखकों ने कलम चलाई है, लेकिन अब भी नये लेखक के लिए वहां बहुत सामग्री है। चित्रकार उनमें जा अपनी त्लिका को घन्य कर सकता है। जो घुमक्कड़ उनके भीतर रमना चाहते हैं, उन्हें ऐसा करने पर अफसोस नहीं होगा। घुमक्कड़ जाति के सहयात्री को जानना चाहिए कि उनमें सभी पिछड़े हुए नहीं हैं। कितनों की समम और संस्कृति का तल ऊंचा है, चाहे शिचा का उन्हें अवसर न मिला हो। घुमक्कड़ उनमें जाकर अपनी लेखनी या त्लिका को सार्थक कर सकता है, उनकी भाषा का अनुसन्धान कर सकता है।

भारत के सिरकीवालों पर वस्तुतः इस दिशा में कोई काम नहीं हुआ है। जो भाषा,साहित्य और वंश की दृष्टि से उनका अध्ययन करना चाहते हैं, उनके लिए आवश्यक होगा कि इन विषयों का पहिले से थोड़ा परिचय कर लें। अंग्रे जों ने एक तरह इस कार्य को अछूता छोड़ा है। यह मैदान भारतीय तरुण धुमक्कड़ों के लिए खाली पड़ा हुआ है। उन्हें अपने साहस, ज्ञान-प्रेम और स्वच्छन्द जीवन को इघर लगाना चाहिये।

व्यमक्कड्-धर्म सार्वदेशिक विश्वव्यापी धर्म है। इस पंथ में किसी के श्राने की मनाही नहीं है. इसलिए यदि देश की तरुशियां भी धुमक्कड़ बनने की इच्छा रखें, तो यह ख़शो की बात है। स्त्री होने से वह साहसहीन है, उसमें श्रज्ञात दिशाश्चों श्रीर देशों में विचरने के संकल्प का श्रभाव है-ऐसी बात नहीं है। जहां स्त्रियों को श्रधिक दासता की बेड़ी में जकड़ा नहीं गया. वहां की स्त्रियां साहस-यात्राधों से बाज नहीं श्रातीं। श्रमेरिकन श्रीर युरोपीय स्त्रियों का पुरुषों की तरह स्वतंत्र हो देश-विदेश में घूमना श्रनहोनी सी बात नहीं है। युरोप की जातियां शिचा श्रीर संस्कृति में बहुत श्रागे हैं, यह कहकर बात को टाला नहीं जा सकता। श्रगर वे लोग श्रागे बढ़े हैं. तो हमें भो उनसे पीछे नहीं रहना है। लेकिन एसिया में भी साहसी यात्रिणियों का श्रभाव नहीं है। १६३४ की बात है, मैं अपनी दूसरी तिब्बत-यात्रा में ल्हासा से द्त्तिगा की श्रोर लौट रहा था। ब्रह्मपुत्र पार करके पहले डांडे को लांधकर एक गांव में पहुंचा। थोड़ी देर बाद दो तरुशियां वहां पहुंचीं। तिब्बत के डांडे बहुत खतरनाक होते हैं. डाकू वहां मुसाफिरों की ताक में बैंटे रहते हैं। तरुशियां बिना किसी भय के डांडा पार करके आईं। उनके बारे में शायद कुछ मालूम नहीं होता, किन्तु जब गांव के एक घर में जाने लगीं, तो कुत्ते ने एक के पैर में काट खाया। वह दवा लेने हमारे पास श्राई, उसी वक्त उनकी कथा माल्म हुई। वह किसी पास के इलाके से नहीं, बल्कि बहुत दूर चीन के कासू प्रदेश में ह्वांड्-हो नदी के पास अपने जन्मस्थान से आई थीं। दोनों की आयु पच्चीस साल से अधिक नहीं रही होगी। यदि साफ कपढ़े पहना दिये जाते, तो कोई भी उन्हें चीन की रानी कहने के लिए तैयार हो जाता। इस आयु और बहुत-कुछ रूपवती होने पर भी वह ह्वांङ्-हो के तट से चलकर भारत की सीमा से सात-आट दिन के रास्ते पर पहुंची थीं। अभी यात्रा समाप्त नहीं हुई थी। भारत को वह बहुत दूर का देश समस्ती थीं, नहीं तो उसे भी अपनी यात्रा में शामिल करने की उत्सुक होतों। परिचम में उन्हें मानसरोवर तक और नेपाल में दर्शन करने तो अवश्य जाना था। वह शिचिता नहीं थीं, न अपनी यात्रा को उन्होंने असाधारण समस्ता था। यह अम्दो तरुणियां कितनी साहसी थीं? उनको देखने के बाद मुसे ख्याल आया, कि हमारी तरुणियां भी घुमक्कड़ी अच्छी तरुह कर सकती हैं।

जहाँ तक घुमक्कड़ी करने का सवाल है, स्त्री का उतना ही श्रिध-कार है, जितना पुरुष का। स्त्री क्यों श्रपने को इतना हीन समसे ? पीढ़ी के बाद पीढ़ी श्राती है, श्रीर स्त्री भी पुरुष की तरह ही बदलती रहती है। किसी वक्त स्वतन्त्र नारियाँ भारत में रहा करती थीं। उन्हें मनुस्मृति के कहने के श्रनुसार स्वतन्त्रता नहीं मिली थी, यद्यपि कोई-कोई भाई इसके पच में मनुस्मृति के श्लोक को उद्धृत करते हैं—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" खेकिन यह वंचनामात्र है। जिन लोगों ने गला फाइ-फाइकर कहा— "न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति" उनकी नारी-पूजा भी कुछ दूसरा द्यर्थ रखती होगी। नारी-पूजा की बात करने वाले एक पुरुष के सामने एक समय मैंने निम्न रलोक उद्धत किया—

> "दर्शने द्विगुणं स्वादु परिवेषे चतुर्गु गम्। सहभोजे चाष्ट्रगुणमित्येतन्मनुरव्रवीत्।।"

( स्त्री के दर्शन करते हुए यदि भोजन करना हो तो वह स्वाद में दुगुना हो जाता है, यदि वह श्रीहस्त से परोसे तो चौगुना श्रीर यदि साथ बैटकर भोजन करने की कृपा करे तो त्राठ गुना—ऐसा मनु ने कहा है।) इस पर जो मनोभाव उनका देखा उससे पता लग गया कि वह नारी-पूजा पर कितना विश्वास रखते हैं। वह पूछ बैठे, यह श्लोक मनुस्सृति के कौनसे स्थान का है। वह त्रासानी से समम सकते थे कि वह उसी स्थान का हो सकता है जहाँ नारी पूजा की बात कही गई है, त्रीर यह भी त्रासानी से बतलाया जा सकता था कि न जाने कितने मनु के श्लोक महाभारत ज्ञादि में बिखरे हुए हैं, किन्तु वर्तमान मनुस्मृति में नहीं मिलते। श्रस्तु! हम तो मनु की दुहाई देकर खियों को त्रपना स्थान लेने की कभी राय नहीं हेंगे।

हाँ, यह मानना पड़ेगा कि सहस्राव्दियों की परतन्त्रता के कारण स्त्री की स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई है। वह अपने पैरों पर खड़ा होने का ढंग नहीं जानती। स्त्री सचमुच लता बनाके रखी गई है। वह श्रव भी लता बनकर रहना चाहती है, यद्यपि पुरुष की कमाई पर जीकर उनमें कोई-कोई 'स्वतन्त्रता' 'स्वतन्त्रता' चिल्लाती हैं। लेकिन समय बदल रहा है। श्रब हाथ-भर का घृंघट काढ़ने वाली माताश्रों की लड़कियाँ मारवाड़ी जैसे श्रतुदार समाज में भी पुरुष के समकन्न होने के लिए मैदान में उतर रही हैं। वह बृद्ध श्रीर श्रीढ़ पुरुष धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने निराशापूर्ण घड़ियों में स्त्रियों की मुक्ति के लिए संघर्ष किया. श्रीर जिनके प्रयत्न का श्रव फल भी दिखाई पड़ने लगा है। लेकिन साहसी तरुणियों को समझना चाहिए कि एक के बाद एक हजारों कडियों से उन्हें बांधके रखा गया है। पुरुष ने उसके रोम-रोम पर काँटी गांड रखी है। स्त्री की श्रवस्था को देखकर बचपन की एक कहानी याद श्राती है-न सदी न गली एक लाश किसी निर्जन नगरी के प्रासाद में पड़ी थी। लाश के रोम-रोम में सुइयाँ गाड़ी हुई थीं। उन सहयों को जैसे जैसे हटाया गया, वैसे-ही-वैसे लाश में चेतना श्राने लगी। जिस वक्त श्राँख पर गड़ी सहयों को निकाल दिया गया उस वक्त लाश बिलकुल सजीव हो डठ बैठी श्रीर बोली "बहुत सोये।"

नारी भी याज के समाज में उसी तरह रोम-रोम में परतन्त्रता की उन सूइयों से विंधी है, जिन्हें पुरुषों के हाथों ने गाड़ा है। किसीको खाशा नहीं रखनी चाहिए कि पुरुष उन सूइयों को निकाल देगा।

उत्साह और साहस की बात करने पर भी यह भूलने की बात नहीं है, कि तरुणी के मार्ग में तरुण से अधिक बाधायें हैं। लेकिन साथ ही आज तक कहीं नहीं देखा गया कि बाधाओं के मारे किसी साहसी ने अपना रास्ता निकालना छोड़ दिया । दूसरे देशों की नारियों जिस तरह साहस दिखाने लगी हैं, उन्हें देखते हुए भारतीय तरुणी क्यों पीछे रहे ?

हाँ, पुरुष ही नहीं प्रकृति भी नारी के लिए अधिक कठोर है। कुछ कठिनाइयाँ ऐसी हैं, जिन्हें पुरुषों की अपेचा नारी को उसने अधिक दिया है। संतित-प्रसन्न का भार स्त्री के ऊपर होना उनमें से एक है। वैसे नारी का ब्याह, अगर उसके ऊपरी आवरण को हटा दिया जाय तो इसके सिन्ना कुछ नहीं है कि नारी ने अपनी रोटी-कपड़े और वस्त्राभूषण के लिए अपना शरीर सारे जीवन के निमित्त किसी पुरुष को बेच दिया है। यह कोई बहुत उच्च आदर्श नहीं है, लेकिन यह मानना पड़ेगा, कि यदि विवाह का यह बंधन भी न होता, तो अभी संतान के भरणपोषण में जो आर्थिक और कुछ शारीरिक नौर से भी पुरुष भाग लेता है, वह भी न लेकर वह स्वच्छन्द विचरता और बच्चों की सारी जिम्मेवारी स्त्री के ऊपर पड़ती। उस समय या तो नारो को मानृत्वसे इन्कार करना पहता, या सारी आफत अपने ऊपर मोल लेनी पड़तो। यह प्रकृति का नारी के ऊपर अन्याय है, लेकिन प्रकृति ने कभी मानव पर खुलकर दया नहीं दिखाई, मानव ने उसकी बाधाओं के रहते उस पर विजय प्राप्त की।

नारी के प्रति जिन पुरुषों ने श्रधिक उदारता दिखाई, उनमें मैं हुद्ध को भी मानता हूँ। इसमें शक नहीं, कितनी ही बातों में वह समय से श्रागे थे, लेकिन तब भी जब स्त्री को भिचुणी बनाने की बात श्राई, तो उन्होंने बहुत श्रानाकानी की, एक तरह गला दबाने पर खियों को संघ में श्राने का श्रधिकार दिया। श्रपने श्रान्तिम समय, निर्वाण के दिन, यह पूछने पर कि खी के साथ भिन्नु को कैसा बर्ताव करना चाहिए, खुद्ध ने कहा—"श्रदर्शन" (नहीं देखना)। श्रीर देखना ही पड़े तो उस वक्त दिल श्रीर दिमाग को वश में रखना। लेकिन में सममता हूँ, यह एकतरफा बात है श्रीर खुद्ध के भावों के विपरीत है, क्योंकि उन्होंने श्रपने एक उपदेश में श्रीर निर्वाण-दिन से बहुत पहले कहा था —

"भिचुत्रो ! में ऐसा एक भी रूप नहीं देखता, जो पुरुष के मन को इस तरह हर लेता है जैसा कि स्त्री का रूप.... खी का राब्द.... खी की गंध.... खी का रस.... खी का स्पर्श....।" इसके बाद उन्होंने यह भी कहा— "भिचुत्रो ! मैं ऐसा एक भी रूप नहीं देखता, जो खी के मन को इस तरह हर लेता है, जैसा कि पुरुष का रूप.... पुरुष का शब्द.... पुरुष की गंध... पुरुष का रस.... पुरुष का स्पर्श....।" दुद्ध ने जो बात यहां कही है, वह बिलकुल स्वामाविक तथा अनुभव पर आश्वित है। खी और पुरुष दोनों एक दूसरे की पूरक इकाइयाँ हैं। 'अदर्शन' उन्होंने इसीलिए कहा था, कि दर्शन से दोनों को उनके रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श एक दूसरे के लिए सबसे अधिक मोहक होते हैं। सारी प्रकृति में इसके उदाहरण मरे पड़े हैं। खी के साथ पुरुष की अधिक धनिष्ठता या पुरुष के साथ खी की अधिक धनिष्ठता यदि एक सीमा से पार होती है, तो परिणाम केवल प्लातोनिक प्रेम तक ही सीमित नहीं रहता। इसी खतरे की और

१. "....नाहं भिक्खवे, ग्रञ्जं एकरूपं पि समनुपम्सामि, यं एवं पुरिसस्स चित्तं परियोदाय तिड्ठति यथियदं भिक्खवे, इत्थिरूपम्..., ...इत्थिसहो..., इत्थिरांधो..., इत्थिरसो..., इत्थिपोड्ठच्चो...। नाहं भिक्खे, ग्रंञ्जं एकरूपंपि समनुपस्सामि यं एवं इत्थियाचित्तम् परियोदाय तिड्ठति यथियदम् भिक्खवे, पुरिसरूपं...,..पुरिस-सहो...,..पुरिस-गंधो...,..पुरिसरसो...,..पुरिसपोड्ठच्चो...।

— ग्रं एतर-निकाय १।११

श्रापने वचन में बुद्ध ने संकेत किया है। इसका यही श्रार्थ है कि जो एक ऊँचे श्रादर्श श्रीर स्वतंत्र जीवन को लेकर चलने वाले हैं, ऐसे नर-नारी श्रिषक सावधानी से काम लें। पुरुष प्लातोनिक प्रेम कहकर खुटी ले सकता है, क्योंकि प्रकृति ने उसे बड़ी जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया है, किन्तु स्त्री कैसे वैसा कर सकती है ?

स्त्रों के धमक्रड होते में बड़ो बाधा मन्द्र्य के लगाये हजारों फंटे नहीं हैं. बल्कि प्रकृति की निष्ठरता ने उसे और मजबूर बना दिया है। लेकिन जैसा मैंने कहा, प्रकृति की मजबूरी का अर्थ यह हिंगज नहीं है, कि मानव प्रकृति के सामने श्रात्म-समर्पण कर दे। जिन तरुणियों धुमक्कड्ी-जीवन बिताना है, उन्हें में अदर्शन की सलाह नहीं दे सकता श्रीर न यही श्राशा रख सकता हैं. कि जहां विश्वामित्र-पराशर श्रादि श्रसफल रहे, वहां निर्वल स्त्री विजय-ध्वजा गाडने में श्रवश्य सफल होगी, यद्यपि उससे जरूर यह आशा रखनी चाहिए. कि ध्वजा को ऊँची रखने की वह पूरी कोशिश करेगी। घुमक्कड़ तरुणी को समम क्षेना चाहिए, कि पुरुष यदि संसार में नये प्राणी के लाने का कारण होता है. तो इससे उसके हाथ-पैर कटकर गिर नहीं जाते । यदि वह श्रधिक उदार श्रीर दयाद हुआ तो कुछ प्रबंध करके वह फिर श्रपनी उन्मुक्त यात्रा को जारी रख सकता है, लेकिन स्त्री यदि एक बार चुकी तो वह पंगु बनकर रहेगी । इस प्रकार घुमक्कड्-व्रत स्वीकार करते समय स्त्री को खब श्रागे-पीछे सोच खेना होगा श्रीर दढ़ साहस के साथ ही इस पथ पर पग रखना होगा। जब एक बार पग रख दिया तो पीछे हटाने का नाम नहीं लेना होगा।

घुमक्कड़ों श्रोर घुमक्कड़ाश्रों, दोनों के लिए श्रपेत्रित गुण बहुत-से एक-से हैं, जिन्हें कि इस शास्त्र के भिन्न-भिन्न स्थानों में बतलाया गया है, जैसे स्त्री के लिए भी कम-से-कम १८ वर्ष की श्रायु तक शित्ता श्रोर तैयारी का समय है, श्रीर उसके लिए भी २० के बाद यात्रा के लिए प्रयाण करना श्रिषक श्रन्छा होगा। विद्या श्रीर दूसरी तैयारियां

दोनों की एक-सी हो सकती हैं, किन्तु स्त्री चिकित्सा में यदि विशेष-योग्यता प्राप्त कर लेती है, अर्थात् डाक्टर बनके साहस-यात्रा के लिए निकलती है, तो वह सबसे अधिक सफल और निद्व न्द्व रहेगी। वह यात्रा करते हुए लोगों का बहुत उपकार कर सकती है। जेसा कि दूसरी जगह संकेत किया गया, यदि तरुण्यां तीन की संख्या में इकट्टा होकर पहली यात्रा आरम्भ करें, तो उन्हें बहुत तरह का सुभीता रहेगा। तीन की संख्या का आग्रह क्यों ? इस प्रश्न का जवाब यही है कि दो की संख्या अपर्याप्त है, और आपस में मतभेद होने पर किसी तटस्थ हितेषी की आवश्यकता पूरी नहीं हो सकती। तीन की संख्या में मध्यस्थ सुलभ हो जाता है। तीन से अधिक संख्या भीड़ या जमात की है, और धुमक्कड़ी तथा जमात बांधकर चलना एक दूसरे के बाधक हैं। यह तीन की संख्या भी आरंभिक यात्राओं के लिए है, अनुभव बढ़ने के बाद उसकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। "एको चरे खग्ग-विसाण् कप्पो" (गैंड के सींग की तरह अकेले विचरे), धुमक्कड़ के सामने तो यही मोटो होना चाहिए।

स्त्रियों को घुमक्कड़ों के लिए प्रोत्साहित करने पर कितने ही भाई मुमसे नाराज होंगे, श्रीर इस पथ की पियका तक्षियों से तो श्रीर भी। लेकिन जो तक्षी मनस्त्रिनी श्रीर कार्यार्थिनी है, वह इसकी पर्वाह नहीं करेगी, यह मुसे विश्वास है। उसे इन पीले पत्तों की बकवाद पर ध्यान नहीं देना चाहिए। जिन नारियों ने श्रांगन की कैंद छोड़कर घर से बाहर पैर रखा है, श्रव उन्हें बाहर विश्व में निकलना है। स्त्रियों ने पहले-पढ़ल जब घूं घट छोड़ा तो क्या कम हल्ला मचा था, श्रीर उन पर क्या कम लांछन लगाये गए थे? लेकिन हमारी श्राष्ट्र निकल्याओं ने दिखला दिया कि साहस करने वाला सफल होता है, श्रीर सफल होने वाले के सामने सभी सिर मुकाते हैं। मैं तो चाहता हूँ, तक्ष्णों की भांति तक्षियां भी हजारों की संख्या में विशाल पृथ्वी पर निकल पड़ें श्रीर दर्जनों की तादाद में प्रथम श्रे श्री की घुमक्कड़ा बनें। बड़ा निश्चय

करने के पहले वह इस बात को समभ लें. कि स्त्री का काम केवल बच्चा पैदा करना नहीं है। फिर उनके रास्ते की बहत कठिनाइयां दर हो सकती हैं। यह पंक्तियां कितने ही धर्मवरंधरों के दिल में कांटे की तरह चुभेंगी। वह कहने लगेंगे. यह दच्चनास्तिक हमारी ललनाओं को सती-सावित्री के पथ से दूर ले जाना चाहता है। मैं कहुंगा, वह काम इस नास्तिक ने नहीं किया, बलिक सती-सावित्री के पथ से दूर ले जाने का काम सौ वर्ष से पहले ही हो गया. जब कि लार्ड विजियम बेंटिक के जमाने में सती प्रथा को उठा दिया गया । उस समय तक स्त्रियों के लिए सबसे ऊंचा श्रादर्श यही था. कि पति के मरने पर वह उसके शव के साथ जिन्दा जल जायं। त्राज तो सती-सावित्री के नाम, पर कोई धर्मघरंधर-चाहे बह श्री १०८ करपात्री जी महाराज हों, या जगद्गुरु शंकराचार्य-सती-प्रथा को फिर से जारी करने के लिए सत्याग्रह नहीं कर सकता, श्रीर न ऐसी मांग के लिए कोई भगवा मण्डा ही उठा सुकता है। यदि सती-प्रथा- अर्थात् जीवित स्त्रियों का मृतक पति के साथ जलाना-- श्रच्छी है, इसे मनवाने के लिए खुल्लमखुल्ला प्रयत्न किया जाय तो. मैं समसता हूँ, त्राज की स्त्रियां सी साल पहले की श्रपनी नगड्दादियों का श्रनुसरण करके उसे खुपचाप स्वीकार नहीं करेंगी; बल्कि वह सारे देश में खलबली मचा देंगी। फिर यदि जिल्हा स्त्रियों को जलती चिता पर बैठाने का प्रयत्न हुआ, तो पुरुष समाज को लेने-के-देने पढ़ जायंगे। जिस तरह सती-प्रथा बार्बंरिक तथा अन्याय-मुलक होने के कारण सदा के लिए ताक पर रख दी गई. उसी तरह स्त्री के उन्मुक्त-मार्ग की जितनी बाघाएं हैं. उन्हें एक-एक करके हटा फेंकना होगा।

स्त्रियों को भी माता-िपता की सम्पत्ति में दायभाग मिलना चाहिए, जब यह कानून पेश हुआ, तो सारे भारत के कदर-पंथी उसके खिलाफ उठ खड़े हुए। श्राश्चर्य तो यह है कि कितने ही उदार समभदार कहे जाने वाले व्यक्ति भी हल्ला-गुल्ला करनेवालों के सहायक बन गए। श्रन्त में मसौदे को खटाई में रख दिया गया। यह बात इसका प्रमाण है कि तथाकथित उदार पुरुष भी स्त्री के सम्बन्ध में किवने श्रनुदार हैं।

भारतीय स्त्रियां श्रपना रास्ता निकाल रही हैं। श्राज वह सेंकड़ों की संख्या में इङ्गलेण्ड, श्रमेरिका तथा तृसरे देशों में पड़ने के लिए गई हुई हैं, श्रीर वह इस सूठे श्लोक को नहीं मानतीं—

> "पिता रच्चित कौमारे भर्चा रच्चित यौवन । पुत्रस्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमहैति ।"

श्राज हं गलेंड, श्रमेरिका में पढ़ने गर्यी कुमारियों की रक्षा करने के लिए कौन संरक्षक भेजे गए हैं ? श्राज स्त्री भी श्रपने श्राप श्रपनी रक्षा कर रही है, जैसे पुरुष श्रपने श्राप श्रपनी रक्षा करता चला श्राया है। दूसरे देशों में स्त्रों के रास्ते की सारी रुकावटें धोरे-धोरे दूर होती गई हैं। उन देशों ने बहुत पहले काम शुरू किया, हमने बहुत पीछे शुरू किया है, लेकिन संसार का प्रवाह हमारे साथ है। पूछा जा सकता है, हितहास में तो कहीं स्त्री की साहस-यात्राश्रों का पता नहीं मिलता। यह श्रच्छा तर्क है, स्त्री को पहले हाथ-पेर बांधकर पटक दो श्रीर फिर उसके बाद कहों कि इतिहास में तो साहसीयात्रिणियों का कहीं नाम नहीं श्राता। यदि इतिहास में श्रभी तक साहस यात्रिणियों का उल्लेख नहीं श्राता, यदि पिछला इतिहास उनके पच में नहीं है, तो श्राज की तरुणी श्रपना नया इतिहास बनायगी, श्रपने लिए नया रास्ता निकालेगी।

तरुणियों को अपना मार्ग मुक्त करने में सफल होने के सम्बन्ध में अपनी शुभ कामना प्रकट करते हुए मैं पुरुषों से कहूंगा—तुम टिटद्री की तरह पैर खड़ाकर आसमान को रोकने की कोशिश न करो । तुम्हारे सामने पिछले पच्चीस सालों में जो महान् परिवर्तन स्त्री-समाज में हुए हैं, वह पिछली शताब्दी के अन्त के वर्षों में वाणी पर भी लाने लायक नहीं थे। नारी की तीन पीढ़ियां क्रमशः बढ़ते-बढ़ते आधुनिक वातावरण में पहुंची हैं। यहां उसका क्रम-विकास कैसा देखने में आता है ? पहली पीढ़ी ने परदा हटाया और पूजा-पाठ की पोथियों तक

पहुंचने का साहस किया, दूसरी पीढ़ी ने थोड़ी-थोड़ी आधुनिक शिचा-दीचा श्रारम्भ की, किन्तु श्रभी उसे कालेज में पढ़ते हुए भी श्रपने सहपाठी पुरुष से समकत्तना करने का साहस नहीं हम्रा था। श्राज तरुशियों की तीसरी पीढी विलक्क तरुशों के समकत्त बनने की तैयार है—साधारण काम नहीं शासन-प्रबन्ध की बड़ी-बड़ी नौकरियों में भी श्रव वह जाने के लिए तैयार है। तुम इस प्रवाह को रोक नहीं सकते। अधिक-से-अधिक अपनी प्रत्रियों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से वंचित रख सकते हो. लेकिन पौत्री को कैसे रोकोगे. जो कि तुम्हारे संसार से कुच करने के बाद श्राने वाली है। हरेक श्राटमी पुत्र श्रीर पुत्रों को ही कुछ वर्षों तक नियंत्रण में रख सकता है, तीसरी पीढी पर नियंत्रण करने वाला व्यक्ति श्रमी तक तो कहीं दिखायी नहीं पडा । श्रीर चौथी पीढ़ी की बात ही क्या करनी, जब कि लोग परदादा का नाम भी नहीं जानते. फिर उनके बनाये विधान कहां तक नियंत्रण रख सकेंगे ? दनिया बदलती श्राई है, बदल रही है श्रीर हमारी श्रांखों के सामने भीषण परिवर्तन दिन-पर-दिन हो रहे हैं। चट्टान से लिर टकराना बुद्धिमान का काम नहीं है। लड़कों के घुमक्कड़ बनने में तुम बाधक होते रहे. लेकिन अब लड़के तुम्हारे हाथ में नहीं रहे । लडकियां भी वैसा ही करने जा रही हैं। उन्हें बुमक्कड़ बनने दो, उन्हें दुर्ग भ श्रीर बीहड रास्तों से भिन्न-भिन्न देशों में जाने दो। लाठी लेकर रचा करने श्रीर पहरा देने से उनकी रचा नहीं हो सकती। वह तभी रचित होंगी जब वह खुद अपनी रचा कर सकेगी। तुम्हारी नीति और श्राचार-नियम सभी दोहरे रहे हैं - हाथी के दांत खाने के और और दिखाने के श्रीर । श्रव सममदार मानव इस तरह के दबल श्राचार-विचार का पालन नहीं कर सकता, यह तुम श्रांखों के सामने देख रहे हो।

## धर्म और सुस्कर्

किसी-किसी पाठक को अस हो सकता है. कि धर्म और आधुनिक धमक्कडी में विरोध है। लेकिन धर्म से धमक्कडी का विरोध कैसे हो सकता है, जबकि हम जानते हैं कि प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ ही कितने ही धर्मी के संस्थापक हुए, और कितनों ने धर्म से संबंधित हो अद्भुत साहसका परिचय देते दुनिया के दूर-दूर के देशों की खाक छानी। फाहि-यान की यात्रा हमने पढ़ी है, स्वेन्चाङ् श्रीर ईचिङ् के भी दुर्दम्य साहस का परिचय उनकी यात्रात्रों से पाया है। मार्कोपोको का उस समय की ज्ञात दनिया में घूमना और देखी हुई चीजों का सजीव वर्णन श्राज भी धमक्कड़ों के हृदय को उल्लंसित कर देता है। जिन धमकड़ों ने श्रपने यात्रा-वृत्तान्त जिले, उनमें भी सबका विवरण हम तक नहीं पहुँचा, लेकिन उनमें बहुत भारी संख्या तो ऐसे घुमक्कड़ों की है, जिन्होंने श्रपना कोई यात्रा-वृत्तान्त नहीं जिखा। तिब्बत में गये दो सौ से ऊपर भार-तीय परिडतों ने कितना कष्ट सहा होगा ? घुमक्कड्-राज स्मृतिज्ञान कीर्ति (१०४२ ई०) ने कितनी साहसपूर्ण यात्रा आज से नौ सौ वर्ष पहले की थी। स्मृति ने अपने और दूसरों के लिखे कई संस्कृत प्रन्थों का भोटिया भाषा में अनुवाद किया, जो अब भी सुरच्चित हैं : किन्तु उन्हों-ने अपनी यात्रा के बारे में कुछ नहीं लिखा। हमें तिब्बत वालों का कृतज्ञ होना चाहिए, जिनके द्वारा स्मृतिज्ञान-कीर्ति की कुछ बातें हम तक पहुँचीं । स्मृतिज्ञान-कीर्ति मगध के किसी बड़े विद्यापीट के मेधावी तरुष परिडत थे। उस समय भारत-मही घुमक्कड़-त्रीरों से विहोन नहीं हुई थी। हमारे तरुणों में दुनिया देखने श्रीर वहां श्रपने देश के सन्देश

पहुंचाने की धुन रहती थी। दुनिया में भी भारत के सांस्कृतिक दूतों की मांग थी, क्योंकि भारतीय संस्कृति का सितारा उस वक्त श्रोज पर था। किसी विद्याप्रेमी तिब्बती बौद ने भारत श्राकर श्रपने देश ले जाने के लिए पिएडतों की खोज की। स्मृति श्रोर उनका एक तरुण साथी तैयार हो गए। विद्यापाठ के बन्धु-बान्धवों ने उनके संकल्प को जानकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की श्रोर बड़ी धूमधाम से विदाई दी। स्मृति श्रोर उनके साथी पैदल चलकर नेपाल पहुँचे। नेपाल में तिब्बत ले जाने वाला पुरुष हैंजे से मर गया। दोनों तरुण बड़ी कठिताई में पड़े। उन्हें भाषा भी नहीं मालूम थी श्रोर जिसके सहारे श्राये थे, वह संग छोड़कर चल बसा। स्मृति ने कहा—हम श्रपनी नाव डुबा चुके हैं, पीछे लोटकर परले पार जाने का कोई उपाय नहीं है। मगध में लौटकर लोगों को क्या जवाब देंगे, जब वे कहेंगे—'श्रा गये तिब्बत में धर्म-विजय करके ?"

श्रन्त में श्रागे चलने का निश्चय करके दोनों तिब्बत के भीतर घुले । यद्यपि स्मृति ने श्रपने साथी को ठोक-पीटकर वहां तक पहुंचाया, तो भी वह उस धातु का नहीं बना था, जिसके कि स्मृतिज्ञान-कीर्ति थे । स्मृति संस्कृत के धुरन्धर पिडत थे, लेकिन वह देख रहे थे कि तिब्बती भाषा जाने बिना उनका सारा गुण गोबर है । उन्होंने निश्चय किया, पहले तिब्बती भाषा पर श्रिषकार प्राप्त करना चाहिए । यह कोई मुश्किल बात न थी, बस सब-कुछ छोड़कर तिब्बती मानव-समाज में दूब जाने की श्रावश्यकता थी । उस वक्त तिब्बती मानव-समाज में दूब जाने की श्रावश्यकता थी । उस वक्त तिब्बत में जहां-तहां संस्कृत के जानने याले व्यक्तिभी मिलते थे, स्मृतिने उनका परिचय श्रपनेलिए भारी विघ्न सममा । भारत श्राने वाले मार्ग के पास के गांव डाङ् में उन्हें इसका ढर लगा, वह श्रद्धापुत्र पार श्रोर दो दिन के रास्ते पर तानक् चले गये । ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में तानक् के लोग कैसे रहे होंगे, यह इसी से सममा जा सकता है कि श्राज भी वहां के लोग खेती पर नहीं श्रिष्ट कतर मेषपालन पर गुजारा करते हैं श्रीर उनका श्रिष्टक समय भी स्थायी घरों में नहीं बल्क काले तंबुश्रों में बीतता है । स्मृति एक फटा-

पुराना चीथड़ा लपेटे, बड़ी गरीबी की हालत में तानक पहुँचे। टूटी-फूटी बोली में मजूरी द्वंदते हुए खाने-कपड़े पर किसीके यहां नौकर हो गए। स्मृति के मालिक-मालिकन ग्राधिक कठोरहृदय के थे. विशेषकर माल-किन तो फ्रटी श्रांखों नहीं देखना चाहती थीं कि स्मृति एक चल भी बिना काम के बेटें। स्मृति ने सब कष्ट सहते हुए कई साल तानक में बिताये। तिब्बती भाषा को उससे भी श्रच्छा बोल सकते थे जैसा कि एक तिब्बती : साथ ही उन्होंने लुक-छिपकर श्रचर श्रीर पुस्तकों से भी परिचय प्राप्त कर लिया था। शायद स्मृति श्रीर भी कुछ साल श्रपनी भेड़ों श्रीर चमरियों को लिये एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते. परन्त इसी समय किसी तिब्बती विद्याप्रेमी को पता लगा। वह स्मृति को पकड़ ले गया। स्मृति को घमक्कड़ी का चस्का लग गया था. श्रीर वह किसी एक खुंटे से बराबर के लिए बंध नहीं सकते थे। स्मृति ने फिर अपनी मातुभूमि का मुंह नहीं देखा श्रीर नेपाल की सीमा से चीन की सीमा तक कुछ समय जहां-तहां टहरते. शिप्यों को पढ़ाते श्रीर प्रन्थों का अनुवाद करते हुए सारा जीवन बिता दिया। स्मृति का बौद्ध-धर्म से श्रतुराग था। हर एक घुमक्कड़ का स्मृति से श्रतुराग होगा; फिर कैसे हो सकता है कि कोई व्यक्ति स्मृति के धर्म (बाँद्ध धर्म ) की श्रवहेलना की दृष्टि से देखे।

एक स्मृति नहीं हजारों बौद्ध-स्मृति एसिया के कोने-कोने में अपनी हिड्डियों को छोड़कर अनन्त निद्धा में विज्ञीन हो गए। एसिया ही नहीं मक़दूनिया, चुद्ध-एसिया, मिश्र से जेकर बोनियो और फिजि-पाइन के द्वीपों तक में उनकी पवित्र अस्थियाँ विखरी पड़ी हैं। बौद्ध ही नहीं उस समय के बाह्यण-धर्मी भी कूप-मंद्धक नहीं थे, वह भी जीवन के सबसे मूल्यवान वर्षों को विद्या और कला के अध्ययन में जगाकर बाहर निकल पड़ते थे।

रत्नाकर की लहरें श्राज भी उनके साहस की साची हैं। जावा को उन्होंने संस्कृति का पाठ पढ़ाया। चम्पा श्रीर कम्बोज में एक-से-एक भुरन्धर विद्वान् भारतीय धुमक्कड़ पहुंचते रहे। वस्तुतः पीछे के तेली के बैलों की ही नहीं बल्कि उस समय के इन धुमक्कड़ों की देखकर कहा गया था—

> ''एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद्यजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिब्यां सर्वमानवाः॥"

श्राज भी जावा के बड़े-बड़े संस्कृत के शिलालेख, कम्बोज के सुन्द्रर गद्य-पद्यमय विशाल श्रभिलेख हमारे उन यशस्वी घुमक्कड़ों की कीर्ति को श्रमर किये हुए हैं। लाखों, करोड़ों, श्ररबों श्रादमी तब से भारत में पैदा हुए श्रौर मर गए, लेकिन ऐसे कीट-पतंगों के जन्म से क्या लाभ ? ये हमारे घुमक्कड़ थे जो डेड़ हजार वर्ष पहले साइबेरिया की बाहकाल भील का चक्कर काट श्राये थे। श्राज भी भारत का नाम वहाँ उन्हींकी तपस्या के कारण श्रत्यन्त श्रद्धा से लिया जाता है। कोरिया के बच्च पर्वंत में जाइये, या जापान के मनोरम कोयासान में, तुङ् हुवान की सहस्त-युद्ध गुहाश्रों में जाइये या श्रफगानिस्तान के बामियान में—सभी जगह श्रपने घुमक्कड़ों के गौरवपूर्ण चिन्ह को देखकर हमारी छाती गज-भर हो जाती है, मस्तक दुनिया के सामने डन्नत श्रौर उनके सामने विनन्न हो जाता है। जिस भूमि ने ऐसे यशस्वी पुत्रों को पैदा किया, क्या वह श्राज केवल घरघुसुश्रों को पैदा करने लायक ही रह गई है ?

हमारे ये भारती घुमक्कड़ बौद्ध भी थे, ब्राह्मण भी थे। उन्होंने एक बढ़े पुनीत कार्य के लिए श्रापस में होड़ लगाई थी और श्रपने कार्य को श्रव्छी तरह संपादित भी किया था। धर्म की सभी बातों में विश्वास करना किसी भी बुद्धिवादी पुरुष के लिए सम्भव नहीं है, न हरएक घुमक्कड़ के सभी तरह के श्राचरणों से सहमत होने की श्रावश्यकता है, घुमक्कड़ इस बात को श्रव्छी तरह से जानता है, इसलिए यह नानात्व में एकत्व को द्वंद निकालता है। मुक्ते याद है १६१३ की वह श्राम, मैं कर्नाटक देश में होसपेट स्टेशन पर उतरकर विजय नगरम के खरडहरों में पहुँचा था-वही खरडर, जिसमें किसी समय मानव-जीवन की सुन्दर मदिरा छलक रही थी, कहीं मिशामाशिक्य, मुक्ता-सुर्वेण से भरी हुई श्रापण-शालायें जगमगा रहा थीं, कहीं संगीत श्रीर साहित्य की चर्चा चल रही थी, कहीं शिल्पी श्रपने हाथ से छूकर जाद की तरह सुन्दर वस्तुओं का निर्माण कर रहे थे, कहीं नाना प्रकार के पकवान श्रौर मिठाइयाँ तैयार करके सजाई हुई थीं, जिनकी सुगनिध से जीभ को सिक्त होने से रोकना मुश्किल था। श्राज जो उजड़े दीखते हैं उस समय में वे भन्य देवालय थे. जिनकी गंध-धूप से चारों श्रोर सगिन्ध छिटक रही थी श्रीर जिनकी बाहर की वीथियों में तरह-तरह की सुग-न्धित पुष्पों की मालाएं सामने रखे मालिनें बेठी रहती थीं। इसी सायं-काल को तरुणियाँ नवीन परिधान पहने अमर-सदश काले-चमकीले केश-पाशों को सुन्दर पुष्पों से सजाये श्रपने यौवन श्रौर सौंदुर्य से दिशाश्रों को चमत्कृत करते घूमने निकलती थीं। प्राचीन विजयनगर के श्रतीत के चित्र को अपने मानस नेत्रों से देखता और पैरों से उसके बीहड कंकाल में वृमता हुआ मैं एक इमली के पेड़ के नीचे पहुँचा। एक पुराने चबूतरे पर वहां एक बृद्ध बैठा था—साधारण श्रादमी नहीं घुमक्कड़ ।

बृद्ध ने एक तरुण घुमक्कड़ को देखकर कहा— श्राश्रो संत, थोड़ा श्राराम करो। तरुण घुमक्कड़ उसके पास बैठ गया। सामने श्राग जल रही थी। दिचणी श्रमेरिका से तीन सौ ही वर्ष पहले श्राये तम्बाकू ने साधारण लोगों के जीवन की ही शुष्कता को कुछ हद तक दूर नहीं कर दिया, बल्कि उसके गुणों के कारण श्राज घुमक्कड़ भी उसके कृतज्ञ हैं। वहां श्राग भी उसोके लिए जल रही थी। नहीं कह सकता, ज्येष्ठ घुमक्कड़ के पास गांजा था या नहीं। यह भी नहीं कह सकता, कि उस महीने में तरुण गांजापान से विरत था या नहीं। खैर, ज्येष्ठ घुमक्कड़ ने सुखे तमाख़ू की चिलम भरी श्रीर फिर दोनों बारी-बारी से चिलम का दम लगाते देश-देशान्तर की बारों करने खगे। थोड़ी देर में एक तीसरा घुमक्कड़ भी श्रा गया।

चिलम कुछ देर से हाथ में आने लगी, किन्तु अब गोष्ठी में तीन क्यां से बातें निकल रही थीं। सूर्य अस्त हो गया, अन्धेरा होने की नौबत आई। तीसरे घुमक्कड़ ने तरुण से कहा—"चलें तुंगभड़ा के तीर, वहां और भी तीन सूर्तियां हैं।" ज्येष्ठ घुमक्कड़ से एक चिर-परिचित बन्धु की तरह वदाई ले तरुण उसके साथ चल पड़ा। जानते हैं वे तीनों घुमक्कड़ कौनसे धर्म को मानते थे। उनका सर्वों-परि धर्म था घुमक्कड़ी, किन्तु उन्होंने अपने-अपने व्यक्तिगत धर्म भी मान रखे थे। उयेष्ठ घुमक्कड़ एक गुमलमान फकीर, अच्छा घुमक्कड़ था; तरुण घुमक्कड़ इन्हीं पंक्तियों का लेखक था, और उस समय शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के पंथों के बीच में लटक रहा था, तथा छूतछात में थोड़ा ही उदार हो पाया था। तीसरा घुमक्कड़ शायद कोई संन्यासी था।

तुंगभद्रा के किनारे पत्थर की मिहयों और घरों की क्या कमी थी, जब कि विजयनगर की सारी नगरी वहां विखरी हुई थी। मढ़ी नहीं पत्थर का श्रोसारा जैसा था। लकड़ी की कमी नहीं थी, यह इसी से स्पष्ट था कि घुनी में मन-मन-भर के तीन-चार छुंदे लगे हुए थे। उस प्रदेश में जाड़ा श्रधिक नहीं होता, तो भी यह पूस-माध का महीना था। पांच मूर्तियां घुनी के किनारे बैठी हुई थीं। किसीके नीचे कम्बल था, किसीके नीचे मुगझाला। दूकान शायद पास में नहीं थी, यदि रही होती तो श्रवश्य उनमें से किसीने भी श्रपने गांठ के पैसे को खोलने में कम उतावलापन नहीं दिखलाया होता। घुम-ककड़ी का रस यहां छुल्-छुल् वह रहा था, किसीमें 'मैं' श्रीर 'मेरे' की मावना न थी, न किसी तरह की चिन्ता थी। उनमें न जाने कौन कहां पैदा हुश्रा था। घुम-कड़ जब तक कोई विशेष प्रयोजन न हो, किसीका जन्मस्थान नहीं पूछते श्रीर जात-पांत पूछना तो घटिया श्रेणी के घुमक्कड़ों में ही देखा जाता है। किसीने श्राटे को गूंध दिया श्रीर किसीने बड़े-बड़े टिक्स धुनी की एक श्रीर हटाई निधूम

श्राग में डाल दिये, किसीने चिलम भरकर भींगी साफी के साथ दोनों हाथों से सर्वज्येष्ठ पुरुष के हाथ में दिया श्रीर उसने ''लेना हो शंकर, गांजा है न कंकर। कैलाशपति के राजा, दम लगाना हो तो श्राजा।" कहकर एक हल्की श्रीर दूसरी कड़ी टान खींची, फिर मुंह से बुँएं की विशाल राशि को चारों श्रोर विखेरते हुए श्रपने बगल के धुमक्कड़ के हाथ में दे दिया। चिलम इसी तरह घूमती रही, उधर देश-देशान्तर की बातें भी होती रहीं । किसीने किसी नवीन स्थान की बातें सुनकर वहां जाने का संकल्प किया; किसीने श्रपने देखे हुए स्थानों की बातें कहकर दूसरे का समर्थन किया। भोजन चाहे सूखी रोटी और नमक का ही रहा हो. लेकिन वह कितना मधुर रहा होगा, इसका अनुमान एक घुमक्कड ही कर सकता है। बड़ी रात तक इसी तरह युमक्कडों का सत्संग चलता रहा। वेदान्त, वैराग्य का वहां कोई नाम नहीं लेता था, न हरिकीर्त्त न की कोई पूछ थी ( अभी हरि-कीर्तन की बीमारी बहुत बड़ी नहीं थी )। धुमक्कड जानते हैं, यह दुनिया ठगने की चीज़ है। प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ इस तरह की प्रवंचना से अलग रहना चाहते हैं।

हाँ, तो धर्मों की संकीर्ण सीमाश्रों को घुमक्कड पार कर जाता है, उसके लिए यह भेदभाव तु च्छु-सी चीज हैं, तभी तो वहां इमली के नीचे मुसलमान घुमक्कड ने दो काफिर घुमक्कड़ों का स्वागत किया श्रोर तुंगभद्रा के तट पर पांचों मूर्तियों ने संन्यासी, वैरागी का कोई ख्याल नहीं रखा। लेकिन घुमक्कड़ की उदारता के रहते हुए भी धर्मों की सीमाएं हैं, जिनके कारण घुमक्कड़ श्रोर ऊपर नहीं उठने पाता। यदि यह नहीं होता तो तहण घुमक्कड़ को इमली के नीचे रात बिताने में उन्न नहीं होना चाहिए था। श्राखिर वहां छुनी रमाये शाहसाहब दो टिक्कर पैदा कर सकते थे, जिसमें एक तहण को भी मिल जाता। यहां श्रावश्यकता थी कि घुमक्कड़ सारे बंधनों को तोड़ फेंकता। वहां तक पहुंचने में इन पंक्तियों के लेखक को पंदर-

सोलह वर्ष और लगे और उसमें सफलता मिली बुद को कृपा से, जिसने हृदय की ग्रन्थियों को भिन्न कर दिया, सारी समस्याओं को छिन्न कर दिया।

ईसाई घुमक्कड़ ब्राह्मण-धर्मी घुमक्कड़ से इस बात में अधिक उदार हो सकता है; सुमलमान फकीर भी धुमक्कड़ी के नशे में चूर होने पर किसी तरह के भेदभाव को नहीं पूछता। लेकिन, सबसे हीरा धर्म धुमक्कड़ के लिए जो हो सकता है, वह है बौद्ध धर्म, जिसमें न छूत्राछूत की गुंजाइश है, न जात-पांत की। वहां मंगोल चेहरा श्रौर भारतीय चेहरा, एसियाई रंग श्रीर यूरोपीय रंग, कोई भेदभाव उपस्थित नहीं कर सकते। जैसे नदियां अपने नाम-रूप को छ। इकर समुद्र में एक हो जाती हैं, उसो तरह यह बुद्ध धर्म है। इस धर्म ने घमक्कड़ों के लिए एसिया के बड़े भाग का दर्वाजा खोल दिया है। चीन में जाश्रो या जापान में, कोरिया में जात्रो या कम्बोज में. स्याम में जात्रो या सिंहल में. तिब्बत में जान्नो या मंगोलिया में. सभी जगह न्नात्मीयता देखने में त्राती है। लेकिन युमक्कड़ को यह श्रात्मीयता किसी संकीर्ण श्रर्थ में नहीं लेबी चाहिए। उसके लिए चाहे कोई रोमन कैथालिक या श्रीक सम्प्रदाय का भिच हो, यदि वह भिचुपन की उच्च सीढ़ी श्रर्थात् प्रथम श्रीणी के घुम-क्कड के पद पर पहुँच गया है, तो उसे ईसाई साधु को देखकर उतना ही श्रानन्द होगा जितना अपने सम्प्रदाय के न्यक्ति से मिलकर । उसके बर्ताव में उसी समय बिलकल अन्तर हो जायगा. जब कि मालूम हो जायगा कि कैथालिक साध तेली का बैल नहीं है और न रेलों तथा जहाजों तक ही गति रखता है। जहां उसने अफ्रीका के सेहरा, सीनाई पर्वत की यात्रा की कुछ बातें बतलाई कि दोनों में सगापन स्थापितहो गया। साध सन्दर सिंह के नाम को कौन सम्मान से नहीं लेगा । वह एक ईसाई धुम-क्कड़ थे और दिमालय के दुर्गम प्रदेशों में बराबर इधर-से-उधर जाते रहने में रस लेते थे। ऐसी ही किसी यात्रा में उन्होंने कहां पर अपने शारीर की छोड़ दिया। साधु सुन्दरसिंह के ईसा के मक्त होने में कौन- सा श्रम्तर पड़ जाता है ? घुमक्कड़ वस्तुतः धर्म को व्यक्तिगत चीज समस्रता है।

धर्मी और सम्प्रदायों के बन्धनों का ऊपरी प्रश्न धुमक्कड़ के लिए कोई बात नहीं है। दोनों सध्य एसिया में इस्लाम के पहुँचने के पहले समक्कड़ सामुत्रों का बालबाला था। देश-देश के समक्कड़ वहां पहुंचते थे। दिख्यासे भारतीय, पूर्व से चीनी बौद्ध त्राते, पश्चिम से नेस्तोरी (ईसाई) श्रीर मानी-पन्थी साधु श्राते । उनके श्रलग-श्रक्रग मठ श्रीर मन्दिर भी थे, किन्तु साथ ही एक दूसरे के मन्दिर के द्वार भी किसीके लिए बन्द नहीं थे। सुदा उत्तर एसिया की घुमन्तु जाति में भी वह बहुत बुमा करते थे। वह भी एक जगह मिलने पर उसी तरह का दृश्य उपस्थित करते, जैसा कि उस दिन तुङ्गभद्दा के किनारे देखने में श्राया था। लेकिन हजार ग्यारह सौ वर्ष पहले मध्य एसिया में इस्लाम जैसा कहर धर्म पहुंच गया । उसने समसाने की जगह तलवार से काम लेना चाहा। मध्य एसिया में ऐसे अनेक उदाहरण भिले हैं, जब कि बौद्ध, मानी श्रीर नेस्तोरी पन्य के सायश्रों ने एक छत के नीचे रहकर अपना जीवन बिताया और उसी छत के नीचे इस्लामी तलवार के नीचे श्रपनी गर्दनें दे दीं। यहां तक कि जब पूर्वी मध्य एसिया से बौद्ध साधु भागकर दिल्ला में लदाख के बोद्ध देश में आये, तो वह अपने साथ नेस्तोरी बन्धुत्रों को भी लेते आये। इस महान् आतुभाव को इस्लामी मुख्लाओं ने नहीं समक पाया । श्रागे चलकर उनमें धुमक्कड़ी का बीज जब जमने लगा. तो सभी धर्मों के साथ सहिष्णुता भी उनके फकीरों में आने लगी !

धर्मों के सम्बन्ध में घुमक्कड़ का क्या भाव होना चाहिए, यह ऊपर के कथन से स्पष्ट हो गया होगा। घुमक्कड़ी वत और संकीर्ण सांप्रदा-यिकता एक साथ नहीं चल सकती। प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ को हम श्रोष्ट पुरुष मानते हैं। वह मानव-मानव में संकीर्ण भेदभाव को नहीं पसन्द करता। सभी धर्मों ने मानवता की जो श्रमुख्य सेवाएं भिनन- भिन्न चेत्रों में की हैं, उसकी वह कदर करता है, यद्यपि धर्मान्धों को वह चमा नहीं कर सकता । सभी धर्मी ने केवल देववाद और पूजा-पाखंड तक ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समस्ती। उन्होंने अपने-अपने कार्यचेत्र में उच्च साहित्य का मृजन किया, उच्चकला का निर्माण किया, वहां के लोगों के मानसिक विकास के तल को ऊंचा किया, साथ हो आर्थिक साधनों को भी उन्नत बनाने में सहायता की। यही सेवाएं हैं. जिनके कारण तत्तद्-देशों में अपने-अपने धर्म के प्रति विशेष सद्भाव श्रौर प्रेम देखा जाता है; तथा कोई श्रपने ऐसे सेवक धर्म को सहसा छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता। जिस तरह धर्मों ने सारे देश श्रीर जाति की सेवा की है, उसी तरह उसने घुमक्कड़ी श्रादर्श के विकास श्चीर विस्तार में भी भाग लिया है। इसलिए धर्मों की सारी निर्दोष भावनाश्रों श्रौर प्रवृत्तियों के प्रति घुमक्कइ की सहानुभूति होती है। हो सकता है, घुमक्कड़ का किसी एक धर्म के प्रति अधिक सम्मान हो, किन्तु अनेक बार घुमक्कड़ को सभी रूपों में देखा जा सकता है। इसे सिद्धान्तहीनता नहीं कहा जा सकता। सिद्धान्तहीनता तो तब हो, जब श्चमक्द अपने उक्त सद्भाव को छिपाना चाहें।

लेकिन आजकल ऐसे भी घुमक्कड़ मिल सकते हैं जो धर्म से बिलकुल सम्बन्ध नहीं रखते। ऐसा घुमक्कड़ बुरा नहीं कहा जा सकता, बल्कि आजकल तो कितने ही प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ इसी तरह के विचार के होते हैं। विस्तृत भूखंड की यात्रा करने और शताब्दियों के अपरिमित ज्ञान के आलोड़न करने पर वह धर्मों से संन्यास ले सकते हैं, तो भी उच्चतम घुमक्कड़ी आदर्श को जो अपने जीवन का अंग बनाते हैं, वह सबसे अधिक अपने घुमक्कड़ बन्धुओं और सारी मानवता के हितेषी होते हैं। समय पड़ने पर नास्तिक घुमक्कड़ अपने विचारों को स्पष्ट प्रकट करते नहीं हिचकिचाता, किन्तु साथ ही सच्चे भाव से धर्म में श्रद्धा रखने वाले किसी अपने घुमक्कड़ बन्धु के दिल को वह कठोर वाग्बाण का लच्य भी नहीं बना सकता। उसका लच्य है, सबको मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखना।

् घुमक्कड को दुनिया में विचरना है, उसे श्रपने जीवन को नदी के प्रवाह की तरह सतत प्रवाहित रखना है, इसीलिए उसे प्रवाह में बाधा डालने वाली बातों से सावधान रहना है। ऐसी बाधक बातों में कुछ के बारे में कहा जा खुका है, लेकिन जो सबसे बड़ी बाधा तरुग के मार्ग में त्राती है, वह है प्रेम । प्रेम का अर्थ है स्त्री और पुरुष का पारस्परिक स्नेह, या शारीरिक श्रीर मानसिक लगाव। कहने को तो श्रेम को एक निराकार मानसिक लगाव कह दिया जाता है. लेकिन वह इतना निर्वल नहीं है। वह नदी जैसे प्रचंड प्रवाह को रोकने की भी सामर्थ्य रखता है। स्वच्छंद मनुष्य की सबसे भारी निर्वेलता इसी प्रेम में निहित है। घुमक्कड़ के सारे जीवन में मनुष्यमात्र के साथ मित्रता श्रीर प्रेम ब्याप्त है। इस जीवन-नियम का वह कहीं भी श्रप-वाद नहीं मानता। स्नेह जहां पुरुष-पुरुष का है, वहां वह उसी निरा-कार सीमा में सीमित रह सकता है, लेकिन पुरुष श्रीर स्त्री का स्नेह कभी प्लातोनिक-प्रेम तक सीमित नहीं रह सकता। घुमक्कड़ अपनी यात्रा में घमते-घामते किसी स्थान पर पहंचता है। उसके स्निग्ध-व्यवहार से उस श्रपरिचित स्थान के नर-नारियों का भी उसके साथ मधुर सम्बंध स्थापित हो जाता है। यदि घुमक्कड़ उस स्थान पर कुछ श्रधिक रह जाता है, श्रीर किसी श्रगलितवयस्का श्रनतिकुरूपा स्त्री से ज्यादा घनिष्ठता हो जाती है. तो निश्चय ही वह साकार-प्रेम के रूप में परिणत होकर रहेगी। बहुतों ने पवित्र, निराकार, श्रभौतिक

प्लातोनिक-प्रेम की बड़ी-बड़ी महिमा गाई है, श्रीर समकाने की कोशिश की है कि स्त्रो-पुरुष का प्रेम सात्विक-तल तक सीमित रह सकता है। लेकिन यह व्याख्या श्रात्मसम्मोहन श्रीर परवंचना से श्रिषक महत्व नहीं रखतो। यदि कोई यह कहे कि ऋणा श्रीर धन विद्युत् तरंग मिलकर प्रज्वलित नहीं होंगे, तो यह मानने की बात नहीं है।

जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, घुमक्कड़ को केवल अपने स्वामा-विक स्नेह या मैत्रीपूर्ण भाव से ही इस खतरे का डर नहीं है। डर तब उत्पन्न होता है, जब वह स्नेह ज्यादा घनिष्ठता श्रोर श्रधिक काल-ब्यापी हो जाय, तथा पात्र भी अनुकूल हो। अधिक घनिष्ठता न होने देने के लिए ही कुछ घुमक्दड़।चार्यों ने नियम बना दिया था, कि घुमक्कड़ एक रात से अधिक एक बस्ती में न रहे। निरुद्देश्य घूमनेवालों के लिए यह नियम अच्छा भी हो सकता है, किन्तु घुमक्कड़ को घूमते हुए दुनिया को श्रांखें खोलकर देखना है, स्थान-स्थान की चाजों श्रौर च्यक्तियों का श्रध्ययन करना है। यह सब एक नजर देखते चले जाने से नहीं हो सकता। हर महत्वपूर्ण स्थान पर उसे समय देना पहेगा, जो दो-चार महीने से दो-एक बरस तक हो सकता है। इसलिए वहां धनिष्ठता उत्पन्न होने का भय श्रवश्य है। बुद्ध ने ऐसे स्थान के लिए दो श्रीर संरचकों की बात बतलाई है -ही ( लज्जा ) श्रीर श्रपत्रपा ( संकोच )। टन्होंने लज्जा श्रीर संकोच को शुक्ल, विशुद्ध या महान् धर्म कहा है, श्रीर उनके माहात्म्य को बहुत गाया है। उनका कहना है, कि इन दोनों शुक्तधर्मों की सहायता से पतन से बचा जा सकता है। श्रीर बातों की तरह बुद्ध की इस साधारण-सी बात में भी महत्व है। लज्जा और संकोच बहुत रचा करते हैं, इसमें सन्देह नहीं, जिस व्यक्ति को अपनी, अपने देश और समाज को प्रतिष्ठा का ख्याल होता है. उसे लज्जा श्रीर संकोच करना ही होता है। उच्च श्रंणी के घुम-क्कड़ कभी ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकते. जिससे उनके व्यक्तित्व या देश पर लांछन लगे। इसलिए ही श्रीर श्रपत्रपा के महत्व को कम नहीं किया जा सकता। इन्हें युमक्कड़ में श्रिषक मात्रा में होना चाहिए। लेकिन भारी कठिनाई यह है कि श्रन्थोन्यपूरक व्यक्तियों में एक दूसरे के साथ जितना ही श्रिषक घनिष्ठता बढ़ती जाती है, उसी के श्रनुसार संकोच दूर होता जाता है; साथ ही दोनों एक दूसरे को सममने लगते हैं, जिसके परिणामस्वरूप लज्जा भी हट जाता है। इस प्रकार लज्जा श्रीर संकोच एक हद तक ही रचा कर सकते हैं।

स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे के प्रति श्राकर्षण श्रीर उसका परिणाम मानव की सनातन समस्या है। इसे हल करने की हर तरह से कोशिश की गई है। श्रादिम समाज में यह कोई समस्या ही नहीं थी. क्योंकि वहाँ दोनों का संपर्क-संसर्ग बिलकुल स्वामाविक रूप में होता था श्रीर समाज द्वारा उसमें कोई श्रापत्ति नहीं उठाई जाती थी। लेकिन जैसे-जैसे समाज का विकास हुआ और विशेषकर स्त्री नहीं पुरुष समाज का स्वामी बन गया, तब से उसने इस स्वाभाविक संसर्ग में बहुत तरह की बाधाएं डालनी सरू कीं। बाधाओं को रखकर पहले उसने जहाँ-तहाँ गुंजाइश भी रखी थी। कितनी ही जातियों में -- जिन्हें एकदम श्रादिम श्रवस्था में नहीं कह सकते -श्रतिथि-सेवा में स्त्री का प्रस्तुत करना भी सम्मिलित था। ग्रंक विचारक सुकात ने अपने अतिथि की इस तरह सेवा की थी। देहरादन जिले के जौनसार इलाके में इस शताब्दी के आरम्भ तक अतिथि की इस प्रकार से सेवा आम बात थी। इस तरह के यौन स्वेच्छाचार के जब सभी आदिम तरीके उठा दिये गए. तो भी सारे बन्धनों को तोडकर बहा ले जाने के दर से लोगों ने दोहरे सदाचार का प्रचार शुरू किया-"प्रवृत्ते औरवीचक्रे, निवृत्ते भैरवीचके" । साधारण समाज के सामने सदाचार का दूसरा रूप रखा गया. श्रीर एकांत में स्वगोष्ठी वालों के सामने दूसरा ही सदाचार माना जाने लगा। यह काम सिर्फ भारतवर्ष में बौद्ध या ब्राह्मणतांत्रिकों ने ही नहीं किया, बल्क दूसरे देशों में भी यह प्रथा देखी गई है। भारत में भी यह प्रथा पुराख-पंथियों तक ही संबंधित नहीं रही, बिल्क कितने ही पूज्य श्राधुनिक महापुरुषों ने इसे श्राध्यात्मिक-साधना का एक श्राव-श्यक श्रंग माना है। यौन-संसर्ग को उसके स्वाभाविक रूप तक में लेना कोई वैसी बात नहीं है, लेकिन श्राध्यात्मिक सिद्धि का उसे साधन मानना, यह मनुष्य की निम्नकोटि की प्रवृत्तियों से श्रनुचित लाभ उठाना मात्र है, मनुष्य की नुद्धि का उपहास करना है।

प्रथम श्रोणी के घुमक्कड़ से यह आशा नहीं रखी जा सकती, कि श्राध्यात्मिसिद्धि, दर्शन, यौगिक चमत्कार की मूल-भुलैया में पड़कर वह प्राचोन या नवीन बाममार्ग की मोहक ज्याख्याश्रों को स्वीकार करेगा। शायद उसके श्रसली श्रादिम रूप में स्वीकार करने में उसे उतनी श्रापत्ति नहीं होगी, किंतु उसे श्रर्थ-धर्म-काम-मोच श्रोर दुनिया की सारी ऋदि-सिद्धियों का साधन मनवाना, यह श्रति में जाना है। लेकिन स्वामाविक मानने का यह श्रर्थ नहीं है, कि घुमक्कड़ उसे बिलकुल हल्के दिल से स्वीकार करे। वस्तुतः उसे श्रपनी व्याख्या का स्वयं लाभ उठाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, श्रीर ख्याल रखना चाहिए, कि वेसा करने पर उसका पंख कट जायगा, श्रीर फिर वह श्राकाशचारी विहग नहीं रह सकेगा।

ही श्रीर श्रपत्रपा के श्रतिरिक्त श्रीर भी चीजें हैं, जिनको ध्यान रखते हुए घुमक्कइ श्रात्म-रचा कर सकता है। यह मालूम है कि यौत-सम्बन्ध जहां सुलम हे, वहाँ रितज रोगों की भरमार होती है। उपदंश श्रीर मूत्रकृष्छ के भयानक रोग उन स्थानों पर सर्वत्र फेले दीख पड़ते हैं। श्रवपिवकसित समाज में यौन-सम्बन्धों पर उतना प्रतिबन्ध नहीं रहता, श्रीर जहाँ ऐसे समाज का सम्बन्ध श्रिषक प्रतिबन्ध वाले तथा श्रीयक विकसित समाज के व्यक्तियों से होता है, वहाँ र्रातज रोगों का भयंकर प्रसार हो पड़ता है। हिमालय के लोग यौन-संबंध में बहुत कुछ दो-ढाई हजार वर्ष पहले के लोगों जैसे थे। श्रं श्रोजों ने हिमालय के कुछ स्थानों पर गोरों के लिए छावनियाँ स्थापित कों, जहाँ मेहानी लोग भी पहंच गए। छावनियों ने रितज रोगों के वितरण का काम बड़े

जोर से किया। श्राज इन छावनियों के पास के गाँवों में ७० प्रतिशत तक नर-नारी रतिज-रोग-प्रस्त हैं। शिमला के पास के कछ गाँव तो उजड़ने को तैयार हैं। एक गाँव में मुत्रक्रच्छ के कारण कई घर निर्वेश हो चके हैं। मुत्रकृष्छ वंश उच्छेद करता श्रीर व्याधिग्रस्त व्यक्ति को क्रष्ट देता है. साथ ही वह उपदंश की भाँति ही एक से दो से चार. चार से सोलह करके शोधता से बढता जाता है: इसलिए एक शताब्दी भी नहीं हुई श्रीर छावनियों के पास के गाँवों की ऐसी हालत हो गई। उप-दंश और भी भयंकर रोग है। वह फैलने ही में तेज नहीं है, बल्कि श्रपने साथ कृष्ठ श्रौर पागलपन की श्रानवंशिक बीमारियाँ लिये चनता है। उपदंश का रोगी संतानोत्पत्ति से वंचित नहीं होता. श्रर्थात वह श्रपने रोग को अगली पीढ़ियों तक के लिए छोड़ जाता है, जिससे व्यक्ति ही नहीं जाति के खिए भी वह भयंकर चीज है। मुत्रकृच्छ की तो पेनिसिलीन जैसी इन्छ रामवाण श्रीषधियाँ भी निकल शाई हैं. लेकिन उपदंश तो श्रव भी श्रसाध्य-सा है। घुमक्कड़ को इस बात पर सावधानी से विचार करना होगा श्रोर ध्यान रखना होगा. जिसमें वह किसी भारी भूल का शिकार नहीं हो जाय। जहाँ यौन-सम्बन्ध सलभ है. वहाँ यदि रतिजरोगों की भयंकरता का ख्याज रखा जाय श्रीर जहाँ दर्जम है, वहाँ लज्जा श्रीर संकोच का कवच पास में रहे, तो कितनी ही हद तक तस्या धुमक्कड़ श्रपनी रचा कर सकता है।

स्त्री-पुरुष का पारस्परिक श्राकर्षण बहुत प्रबल है। सवाल हो सकता है, क्या घुमक्कड़ के लिए ऐसा गस्ता निकल श्रा सकता है, जिसमें वह श्रपने धर्म से पतित हुए बिना जीवन-यात्रा को प्रा कर सके ? हां, इस का एक ही उपाय है, जिसकी श्रोर हम संकेत भी कर चुके हैं। वह है दो घुमक्कड़ व्यक्तियों में प्रेम का होना, जिसके लिए वह यह शर्व रख सकते हैं, कि प्रेम उनके लिए पाश बनने का कारण न होगा। ऐसा प्रेम या तो नदी या नाव का संयोग होगा या दो सह-यात्रियों का प्रेम होगा। लेकिन होनों श्रवस्थाश्रों में यह तो ध्यान रखना

होगा, कि संख्या चतुष्पाद से ग्रधिक नहीं हो। शर्त कठिन है, लेकिन जिसने घुमक्कड़ का बत जिया है, उसे ऐसी शर्तों के लिए तैयार रहना चाहिए।

कई घुमक्कड़ों ने जरा-सी श्रसावधानी से श्रपने लच्य को खो दिया. श्रीर बैल बनकर खुंटे से बंध गए। कहां उनका वह जीवन, जब कि वह सदा चलते-वृमते श्रपने मुक्त जीवन श्रीर न्यापक ज्ञान से दूसरों की लाभ पहुँचाते रहे, और कहां उनका चरम पतन ? मुक्ते आज भी अपने एक मित्र की करुण-कहानी याद आती है। उसकी व्रमक्कड़ी भारत से बाहर नहीं हुई थी, लेकिन भारत में वह काफी बूमा था; यदि भूल न की होती, तो बाहर भी बहुत घूमता। वह प्रतिभाशाली विद्वान था। मैं उसका सदा प्रशंसक रहा, यद्यपि न जानने के कारण एक बार उसकी ईष्यों हो गई थी। घूमते-घूमते वह गुड़ की मक्खी बन गया, पंख बेकार हो गए। फिर क्या था, द्विपाद से चतुष्पाद तक ही थोड़े रुक सकता था । षट्पद, श्रष्टापद शायद द्वादशपाद तक पहुँचा । सारी चिन्ताएं श्रब उसके सिर पर आ गईं। उसका वह निर्भीक श्रीर स्वतंत्र स्वभाव सपना हो चला, जब कि नृन-तेल-लकड़ी की चिंता का वेग बड़ा। नून-तेल-लकड़ी जुटाने की चिंता ने उसके सारे समय को ले लिया और श्रब वह गगन-बिहारी हारिल जमीन पर तडफडा रहा था। चिंताएँ उसके स्वास्थ्य को खाने लगीं और मन को भी निर्वल करने लगीं। वह श्रद्भुत प्रतिभाशाली स्वतंत्रचेता विद्वान-जिसका श्रभाव सुके कभी-कभी बहुत खिन्न कर देता है--श्रंत में श्रपनी बुद्धि खो बैठा, पागल हो गया। खैरियत यही हुई कि एक-दो साल ही में उसे इस दुनिया श्रौर उसकी चिन्ता से मुक्ति मिल गई। यदि वह श्रसाधारण मेघावी पुरुष न होता. यदि वह बड़े-बड़े स्वमों को देखने की शक्ति नहीं रखता, तो साधारण मनुष्य की तरह शायद कैसे ही जीवन बिता देता। उसकी ऐसा भयंकर द्रांड इसीलिए मिला कि उसने जीवन के सामने जो उच्च तच्य रखा था. जिसे श्रपनी गतती के कारण उसे छोड़ना पड़ा था, वही श्रंत में चरम निराशा श्रौर श्रात्मग्लानि का कारण बना। धुमक्कड़ तरुण जब श्रपने महान् श्रादर्श के लिए जीवन समर्पित करे, तो उसे पहले सोच श्रौर समम लेना होगा कि गलतियों के कारण श्रादमी को कितना नीचे गिरना पड़ता है श्रौर परिणाम क्या होता है।

इन पंक्तियों के लिखने से शायद किसी को यह ख्याल श्राए, कि युमक्कड़ पंथ के पथिकों के लिए भी वही ब्रह्मचर्य चिरपरिचित किंतू श्रव्यवहार्यं, वही श्राकाश-फल तोड़ने का प्रयास बतलाया जा रहा है। मैं समक्तता हूँ, उन सीमाओं श्रौर बंघनों को न मानकर फूंक से उड़ा देना केवल मन की कल्पना-मात्र होगी, जिन्हें कि श्राज के समाज ने बड़ी कड़ाई के साथ स्वीकार कर लिया है। हो सकता है यह रूढ़ियां कुछ सालों बाद बदल जायं—बड़ी-बड़ी रूढ़ियां भी बदलती देखी जा रही हैं—उस वक्त घुमक्कड़ के रास्ते की कितनो ही कठिनाइयां स्वतः हल हो जायंगी। लेकिन इस समय तो घुमक्कड़ को बहुत ऋछ श्राज के बाजार के भाव से चीजों को खरीदना पड़ेगा, इसीलिए लज्जा और संकोच को हटा फेंकना श्रच्छा नहीं होगा। यह सब मानते हुए भी यह भी मानना पड़ेगा कि प्रेम में स्वभावतः कोई ऐसा दोष नहीं है। वह मानव-जीवन को शुष्क से सरस बनाता है, वह श्रद्भुत श्रात्म-त्याग का भी पाठ पढ़ाता है। दो स्वच्छन्द न्यक्ति एक दूसरे से प्रेम करें यह मनुष्य की उत्पत्ति के श्रारम्भ से होता श्राया है, श्राज भी हो रहा है, भविष्य में भी ऐसे किसी समय की कल्पना नहीं की जा सकती, जब कि मानव श्रौर मानवी एक दूसरे के लिए श्राकर्षक श्रौर पूरक न हों। वस्तुतः हमारा ऋगड़ा प्रेम से नहीं है; प्रेम रहे, किंतु पंख भी साथ में रहें। प्रेम यदि पंखों को गिराकर ही रहना चाहता है, तब तो कम-से-कम धुमक्कड़ को इसके बारे में सोचना क्या, पहते ही उसे हाथ जोड़ देना होगा। दोनों प्रेमियों के घुमक्कड़ी धर्म पर दृढ़ आरूढ़ होने पर बाघा का कम डर रहता है। एक हिमालय का घुमक्कड़ कई सालों तक चीन से भारत की सीमा तक पैदल चक्कर लगाता रहा; उसके साथ

उसी तरह की सहयात्रिणी थी। लेकिन कुछ सालों बाद न जाने कैसे मतिश्रम में पड़े, श्रीर वह चतुष्पाद से षट्पद हो गए, फिर उसके पुराने सारे गुण जाते रहे—न वह जोश रहा, न वह तेज।

प्रेम के बारे में किस-किस दृष्टि से सोचने की आवश्यकता है. इसे हमने दुछ यहां रख दिया है। घुमक्द को परिस्थिति देखकर इस पर विचार करना श्रीर रास्ता स्वीकार करना चाहिए। शरीर में पौरुष श्रीर बल रहते-रहते यदि भूल हो तो कम-से-कम श्रादमी एक घाट का तो हो सकता है। समय बीत जाने पर शक्ति के शिथिल हो जाने पर भार का कंधे पर श्राना श्रधिक दःख का कारण होता हैं। फिर यह भी समक्त लेना है, कि व्यमक्कड़ का श्रन्तिम जीवन पेंशन लेने का नहीं है। समय के साथ-साथ श्रादमी का ज्ञान श्रीर श्रनभव बढ़ता जाता है. श्रीर उसको अपने ज्ञान श्रीर श्रमुभव से दुनिया को लाभ पहुंचाना है, तभी वह अपनी जिम्मेदारी और हृद्य के भार को हल्का कर सकता है। इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए. कि समय के साथ दिन और रातें छोटी होती जाती हैं। बचपन के दिनों श्रीर महीनों पर ख्याल दौड़ाइए, उन्हें श्राज के दिनों से मुकाबला कीजिए, मालूम होगा, श्राज के दस दिन के बराबर उस समय का एक दिन हुआ करताथा। वह दिन युगों में वैसे ही बीते, जैसे तेज़ बखार श्राष्ट श्रादमी का दिन । श्रान्तिम समय में, जहां दिन-रात इस प्रकार छोटे हो जाते हैं, वहां करणीय कामों की संख्या श्रौर बद जाती है। जिस वक्त अपनी दकान समेटनी है. उस समय के मूल्य का ज्यादा ख्याल करना होगा श्रीर श्रपनी घुमक्दड़ी की सारी देनों को संसार को देकर महाप्रयाण के लिए तैयार रहने की श्रावश्यकता है। भला ऐसे समय पंथ की सीमाश्रों के बाहर जाकर प्रेम करने की कहां गुंजाइश रह जाती है ? इस प्रकार घुमक्कड़ी से पेंशन लेकर प्रेम करने की साध भी उचित नहीं कहीं जा सकती।

तो क्या कहना पढ़ेगा, कि मेघदूत के यस की तरह और एक

वर्ष नहीं बल्कि सदा के लिए प्रेम से श्रीभशप्त होकर रहना वुमक्कड़ के भाग्य में बदा है। बात वस्तुतः बहुत कुछ ऐसो ही मालूम होती है। युमक्कड चाहे मुंह से कहे या न कहे, लेकिन दूसरों को समम लेना चाहिए, कि उससे प्रेम करके कोई व्यक्ति सुखी नहीं रह सकता। वह अपने सम्पूर्ण हृदय को किसी दूसरी प्रेयशी - घुमक्कड़ी - को दे चुका है। उसके दो हृदय तो नहीं हैं। कि एक-एक को एक-एक में बाँट दे । घ्रमक्कड़ों की प्रेमिकाओं का बहुत पुराना तजर्बा है--''परदेसी की शीत, भुस का तापना। दिया कलेजा फूंक, हुआ नहीं आपना।" हमारे देश में बंगाल श्रौर कामाख्या जादगर महिलाश्रों के देश माने जाते रहे हैं. कोई-कोई कटक को भी उसमें शामिल करते थे और कहा जाता था, कि वहां की जादगरनियां आदमी को भेड़ा बनाकर रख लेती हैं। बुमक्कड़ों की परम्परा में ऐसे श्रीर कई स्थान शामिल किये गए थे, जिनकी बातें मौखिक परम्परा से एक से दूसरे के पास पहुँच जाती थीं। एक श्राजनम घुमक्कड साधु छुल्लू की सीमा के भीतर इसलिए नहीं गये, कि उन्हें किसी गुरु ने बतला दिया था-"जो जाये कुल्लू, हो जाये उल्लू।" हमारे श्राज के घुमक्कड को सिर्फ भारत की सीमा के ही भीतर नहीं रह पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण चारों खुंट पृथ्वी को त्रिविक्रम की तरह अपने पैरों से नापना है. फिर उसके रास्ते में न जाने कितने कामाख्या, बंगाल श्रीर कुल्लू मिलेंगे. और न जाने कितनी जगह मंत्र पढ़कर पीली सरसों उस पर फोंकी जायगी । इसलिए उसके पास दृढ़ मनोबल की वैसी ही ऋत्यधिक श्रावश्यकता है जैसे दुर्गम पथों में साहस श्रीर निभीकता की।

## देश-ज्ञान

श्राज जिस प्रकार के घमनकड़ों की दुनिया को श्रावश्यकता है. उन्हें अपनी यात्रा केवल "स्वान्त: सखाय" नहीं करनी है। उन्हें हरेक चीज इस दृष्टि से देखनी है, जिसमें कि घर बैठे रहनेवाले दूसरे लाखों ब्यक्तियों की वह श्रांख बन सके। इसीलिए वुसक्कड़ को श्रपनी यात्रा के आरंभ करने से पहले उस देश के बारे में कितनी ही बातों की जानकारी प्राप्त कर लेनी आवश्यक है। सबसे पहले जरूरी है रास्ता श्रीर देश के ज्ञान के लिए नक्शे का श्रध्ययन । प्राने युग के घुमक्कड़ों के लिए यह बड़ी कठिन बात थी। उस वक्त नक्शे जो थे भी, वे अंदाजी हुआ करते थे। यद्यपि मोटी-मोटी बातों और दिशाओं का ज्ञान हो जाता था. किन्त देश का कितना थोड़ा ज्ञान होता था, यह तालमी या दूसरे पुराने नक्शाकारों के मानचित्रों को देखने से मालम हो जायगा। उस नक्शे का ग्राज के देश से सम्बन्ध जोड़ना मुश्किल था। ईसवी सदी के बाद जब रोमक, भारतीय श्रीर श्ररब ज्योति-षियों ने भिन्न-भिन्न नगरों के अन्तांश और देशान्तर बेध द्वारा मालम किये. तो भौगोलिक जानकारी के लिए अधिक सुभीता हो गया। तो भी श्रव्छे नक्शे १८ वों सदी से ही बनने लगे। श्राज तो नक्शा-निर्माण एक उच्च-कला और एक समृद्ध विज्ञान है। किसी देश में यात्रा करने वाले घुमक्कड़ के लिए नक्शे का देखना ही नहीं, बल्कि उसके मोटे-मोटे स्थानों को हृदयस्थ कर लेना त्रावश्यक है। जिन नगरों श्रीर स्थानों में जाना है, वहां की भूमि पहाड़ो, मैदानी या बालुकामयी है, इन बातों का ज्ञान होना चाहिए। पहाड़ी भूमि की कम-से कम और श्रधिक से-श्रधिक

कितनी उंचाई है. यह भी मालुम होना चाहिए। श्रकांश श्रीर उन्नतांश ( सूमि की ऊंचाई ) के अनुसार सदीं बढ़ती-घटती है। ऋतुत्रों का परिवर्तन सुमात्रा के बीच से जाने वाली भूमध्यरेखा के उत्तर श्रीर दक्खिन में उल्टा होता है। जावा श्रौर बाली की श्रोर जाने वाले घुमक्कड़ों का इसकी श्रोर ध्यान होना श्रावश्यक है। हमारे यहां यह तो कथा थी, कि देवों के देश में छ महीने का दिन और छ महीने की रात होती है. लेकिन भौगोलिक तथ्य के तौर पर इसका ज्ञान श्रायुनिक काल ही में हुआ। रात्रि श्रौर दिन का इतना विस्तार हो जाना कि वह एक-दूमरे की जगह ले लें, इसका पता काफी पहले से ही चुका था। १३६५ ई० में तैमूर रूस के मंगील शासकों पर चढ़ाई करते हुए मास्को तक गया। उसकी सेना उत्तर में बढ़ते-बढ़ते बहुत दूर चली गई, जहां रात्रि नाम मात्र की रह गई। तैमर के सौभाग्य से रोजे का दिन नहीं था, नहीं तो या तो धर्म छोड़ना होता या प्राग देना पड़ता। तो भी यह समस्या थी कि २० घंटे के दिन में पाँचों नमाजों को कैसे बाँटा जाय। तैमूर ने तीन साल बाद १३१८ ई॰ में दिल्ली भी लटी, लेकिन शायद उस वक्त के दिल्ली वालों को तैमूर के सिपाहियों की इस बात पर विश्वास नहीं होता। बहुत दूर उत्तरी ध्रव में छ महीने का दिन श्रीर छ महीने की रात होती है। मैंने तो लेनिनग्राद में भी देखा कि गर्मियों के प्रायः तीन महीने, जिसमें जुलाई श्रीर श्रगस्त भी शामिल हैं, रात्रि होती ही नहीं। दस बजे सूर्यास्त हुन्ना, दो घंटा गोधू लि ने लिया श्रीर श्रगले दो घंटों को उषा ने। इस प्रकार रात बेचारी के लिए श्रव-काश ही नहीं रह जाता, श्रौर श्राधी रात को भी श्राप घर से बाहर बिना चिराग के श्रखबार पढ़ सकते हैं।

इन भौगोलिक विचित्रताओं का थोड़ा बहुत ज्ञान घुमक्कड़ को अपनी प्रथम यात्रा से पहले होना चाहिए। जब वह किसी खास देश में विचरने जा रहा हो, तो उसके बारे में बड़े नक्शे को लेकर सभी चीजों का भली भांति अध्ययन करना चाहिए। तिब्बत और मारत के बीच में उतुंग हिमालय की पर्वतमालायें हैं, लेकिन वह कभी मनुष्य के लिए दुर्ल च्य नहीं रहा। कारमीर से लेकर श्रासाम तक कई सौ ऐसे पर्वत-कंठ हैं, जिनसे पर्वत-पृष्ठों को पार किया जा सकता है। हां, रास्ते सभी सुगम नहीं हैं, न सभी रास्तों में बस्तियाँ श्रासानी से मिलती हैं, इस-लिए श्रपशिचत व्यक्ति को ऐसे ही डांडों को पकड़ना पड़ता है, जिनसे प्रधान रास्ते जाते हैं। जहां राज्य की तरफ से दिक्कतें हैं, वहां भेस बदलकर रास्तों को पार किया जा सकता है, श्रथवा श्रप्रचलित रास्तों को स्वीकार करना पड़ता है।

रक्शे को देखकर श्रासाम, भूटान, सिकिम, नेपाल, कमायूं, टिहरी, बुशहर, कांगड़ा और कारमीर से तिब्बत की श्रोर जाने वाले रास्तों. उनकी बस्तियों तथा भिन्न-भिन्न स्थानों की पहाड़ी ऊ'चाइयों को जिसने देख जिया है, उसके जिए कितनी ही बातें साफ हो जाती हैं। एक डांडा पार कर लेने पर तो दसरे रास्ते की जानकारी स्वयं ही बहत-सी हो जाती है। जिसमें घुमक्कड़ी का श्रंकुर निहित है, उसे दो-चार मर्तबः देखा नक्शा श्रांख मंदने पर भी दिखलाई पड़ता है। क्म-से-कम नक्शे के साथ उसका अत्यधिक प्रेम तो होता ही है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि छिपकर की गई यात्राओं में अन्सर नक्शे का पास रखना ठीक नहीं होता. कभी-कभी तो उसका कारण विदेशी गुप्तचर माना जाने लगता है, इसलिए घुमक्कइ यदि नक्शे को दिसाग में बैठा ले. तो श्रच्हा है। कमी-कभी सुगरिचित-सी साधारण पुस्तक के छपे नदशे से भी काम लिया जा सकच है। नक्शा ही मही. बाज वक्त तो पुस्तक को भी छोड़ देना पड़ता है। प्रथम तिब्बत-यात्रा में, पहले जिस श्रंप्रोजी पुस्तक से मैंने तिब्बती भाषा का श्रध्य-यन विया था. उसे एक स्थान पर छोड़ देना पड़ा, और नक्शों को नदी में बहाना पड़ा।

नवशों के उपयोग के साथ-साथ थोड़ा-बहुत नवशा बनाने का अभ्यास हो तो अच्छा है। दूसरे नक्शे से काम की चीजें उतार लेगा, तो श्रवश्य श्राना चाहिए। जो घुमक्कड भूगोल के सम्बन्ध में विशेष परिश्रम कर चुका है, और दिसे अल्पपरिचित-से स्थानों में जाना है, उसको उक्त स्थान के नक्शे के शद-अशद होने की जाँच करनी चाहिए। तिब्बत ही नहीं श्रासाम में उत्तरी कोरण पर भी कुछ ऐसे स्थान हैं. जिनका प्रामाणिक नक्शा नहीं बन पार्या है। नक्शों में बिन्दु जोड़ कर बनाई निद्याँ दिखाई गई होती हैं, जिसका अर्थ यही है कि वहां के लिए श्रभी नवशा बनाने वाले श्रपने ज्ञान को निर्विवाद नहीं सम-भते। ग्राज के युमक्कड़ का एक कर्त्तंब्य ऐसी विवादास्पद जगहों के बारे में निर्विवाद तथ्य का निकालना भी है। ऐसा भी होता है कि घुमक्कड़ पहले से किसी बात के लिए तैयार नहीं रहता, लेकिन श्रावश्यकता पढने पर वह उसे सीख लेता है। श्रावश्यकताश्रों ने ही बलात्कार करके सभे कितनी ही चीजें सिखलाई । मेरे धुमक्कड मित्र मानसरोवर-वासी स्वामी प्रगावानन्द जी को आवश्यकता ही ने योगी परिवाजक से भूगोलज्ञ बना दिया, श्रीर उन्होंने मानसरीवर प्रदेश के सम्बन्ध की कुछ निर्भान्त समस्रा जाने वाली आंत धारणाओं का संशोधन किया। हम नहीं कहते, हरेक घुमक्कड़ को सर्वज्ञ होना चाहिए, किन्तु झमक्कड़ी पथ पर पैर रखते हुए कुछ कुछ ज्ञान तो बहुत-सी बातों का होना जरूरी है।

सभी देशों के अच्छे नक्शे न मिल सकें, और सभी देशों के संबन्ध में परिचय-अंथ भी अपनी परिचित भाषा में शायद न मिलें, किन्तु, जो भी साहित्य उपलब्ध हो सके, उसे देश के भीतर धुसने से पहले पढ़ लेना बहुत लाभदायक होता है। इससे आदमी का दृष्टिकोण विशाल हो जाता है, सभी तो नहीं लेकिन बहुत से धुंधले स्थान भी अकाश में आ जाते हैं। अपने पूर्वंज धुमम्कड़ों के परिश्रम के फल से लाभ उठाना हरेक धुमक्कड़ का कर्जंब्य है।

धुमक्कड़ के उपयोग की पुस्तकें केवल श्रंग्रेजी में ही नहीं हैं, जर्मन, रूसी और फ्रेंच में भी ऐसी बहुत-सी पुस्तकें हैं। हमारी हिंदी

तो देश की परतन्त्रता के कारण अभी तक अनाथ था। किन्त अब हमारा कर्त्तच्य है कि हिन्दी में इस तरह के साहित्य का निर्माण करें। हमारे देशभाई व्यापार या दूसरे सिलसिले में दुनिया के कौनसे छोर में नहीं पहुंचे हैं ? एसिया और यूरोप का कोई स्थान नहीं, जहां पर वह न हों। उत्तरी अमेरिका और दक्खिनी अमेरिका के राज्यों में कितनी ही जगहों में हजारों की तादाद में वह बस गए हैं। जिनके हाथ में लेखनो है श्रोंर जिनकी श्रांखों ने देखा है, इन दोनों के संयोग से बहत-सी बोकप्रिय पुस्तकें तेयार की जा सकती हैं। अभी तक अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, चीनी में जो पुस्तकें भिन्न-भिन्न देशों के बारे में जिखी गई हैं, उनका अनुवाद तो होना ही चाहिए। अव पर्यटकों ने आउगें से चौरहवीं पनद्ववीं सदी तक दुनिया के देशों के सम्बन्ध में बहुत से भौगोलिक यंथ लिखे। पश्चिमी भाषात्रों में विशेष यंथमाला निकाल इन ग्रंथों का श्रन्वाद कराया गया। हमारे घुमक्कडों को पर्यटन में पूरी सहायता के लिए यह जावश्यक है, कि श्रादिमकाल से लेकर श्राज तक भूगोल के जितने महत्वपूर्ण प्रंथ किसी भाषा में लिखे गए हैं, उनका दिन्दी में श्रनुवाद कर दिया जाय। ऐसे प्रथों की संख्या दो हजार से कम न होगी। हमें श्राशा है, श्रगते दस-पन्द्रह सालों में इस दिशा में पूरा कार्य हो जायगा: तब तक के लिए हमारे श्राज के कितने ही घुमक्कड़ श्रंप्रेजी से श्रनभिज्ञ नहीं हैं।

भूगोल-सम्बन्धी ज्ञान के त्रातिरिक्त हमें गन्तव्य देश के लोगों के बारे में भी पहले में जितनी बार्ते मालूम हो सकें, जान लेनी चाहिएं। भूमि के बाद जो बात सबसे पहले जानने की है, वह है वहाँ के लोगों के वंश का परिचय। तिब्बत, मंगोलिया, चीन, जापान, बर्मा श्रादि के लोगों की श्रांखों श्रोर चेहरे को देखते ही हमें मालूम हो जाता है, कि वह एक विशेष जाति के हैं। लेकिन ऐसी श्रांख नेपाल में भी मिलती हैं। छोटी नाक, गाल की उठी हड्डी, छुछ श्रधमुंदी-सी श्रांखें तथा जरा-सी उपर की श्रोर तनी भोंहें—यह मंगोल वंश के चिन्ह हैं। इसी तरह

मानववंश-शास्त्र द्वारा हमें नीयो, द्वविड, हिन्दी यूरोपीय तथा भिन्न-भिन्न मिश्रित वंशों के संबन्ध की बहुत-सी बार्ते मालूम हो जायंगी। यह श्रांख, हड्डी, नाक तथा खोपड़ी की बनावट का ज्ञान श्रागे फिर उस देश के लोगों का इतिहास जानने में सहायक होगा। स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य जंगम प्राणी है, वह बराबर धूमता रहा है। मनुष्य-मनुष्य का सिम्मश्रण खूब हुश्रा है। श्राज के दोनों मध्य-एसिया श्रौर श्रक्ताई के पच्छिम के भाग में श्राज मंगोलीय जाति का निवास दिखाई पड़ता है, किन्तु २१०० वर्ष पहले वहां उनका पता नहीं था। उस समय वहां वह लोग निवास करते थे, जिनके भाई-बन्द भारत-ईरान में श्रार्य श्रौर बोल्गा से पच्छिम में शक कहे जाते थे। इसी तरह लदान्व के लोग श्राजकल तिब्बती बोलते हैं, ईसा की सातवीं सदी से पहले वहां मंगोल-भिन्न जाति रहती थी, जिसे खश-दरद कहते थे। नृवंश का थोड़ा-बहुत परिचय गंतब्य देश की यात्रा को श्रिधक मुगम बना देता है।

गंतच्य देश की भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके युमकड़ को उस देश में जाना चाहिए, यह नियम अनावश्यक है। यदि युमकड़ को आव-श्यकता हुई और अधिक समय तक रहना पड़ा, तां वह अपने आप भाषा को सीख लेगा। जहां जो भाषा बोली जाती है, वहां जाकर उसे सीखना दस गुना आसान है। जिन भाषाओं के लिखने की वर्ण-मालाएं हैं, उनका लिखना पड़ना आसान है। लेकिन चीनी और जापानी की बात दूसरी है। उनकी लिखित भाषा को सीखना बहुत कम युमकहों के बस की बात है, किन्तु चीनी-जापानी भाषा बोलना मुश्किल नहीं है—चीनी तो और भी आसान हैं। भाषा सीखकर न जानने पर भी युमक्कड़ को गन्तव्य देश की भाषा का थोड़ा परिचय तो अवश्य होना चाहिए.। अति प्रयुक्त दो सौ शब्द यदि सीख लिये जायं, तो उनसे यात्रा में बड़ी सहायता होगी। कम-से-कम दो सौ शब्द हों पुस्तकों से मालुम हो सकते हैं। हिन्दी में तो अभी इस तरफ काम ही नहीं हुआ है। यदि

भारत फिर प्राचीन काल की तरह प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ों की पैदा करना चाहता है, तो यह ब्यावश्यक है कि हिन्दी में प्रत्येक देश को सौ-डेड़सी पृष्ठ के परिचय-प्रन्थ लिखे जायं, जिनमें नक्शे के साथ दो-चारसी शब्द भी हों।

नये देश में जो बातें सबसे पहले हमारा ध्यान श्राकृष्ट करती हैं. वनके बारे में हम कह चुके। लेकिन देश के ज्ञान के लिए श्रांखों से देखी जाने वाली बातें ही पर्याप्त नहीं हैं। हरेक देश और समाज सहियों-सहसाब्दियों के विकास का परिणाम है। इसलिए वहां के इतिहास के बारे में भी कुछ ज्ञान होना चाहिए। यदि वह ऐसा देश है, जहां की प्रचलित या धार्मिक भाषा का घुमक्कड़ की परिचय है, तो उसे वहां के इतिहास और ऐतिहासिक सामग्री को विशेष ध्यान से देखना होगा। समात्रा. जावा, बाली, मलाया, बर्मा, स्याम श्रीर कम्बोज में जाने वाले भारतीय घमकड को तो इस तरफ अधिक ध्यान देना बहुत आवश्यक है। इन देशों के लोग भारतीय घुमक्कड़ से इस विषय में कुछ अधिक काजा रखेंगे। ये देश भारतीय संस्कृति के विस्तार-चेत्र हैं. इसलिए वहां के लोग अपनी संस्कृति का भारत को उदुगम स्थान मानते हैं. श्रतः भारतीय से कुछ श्रधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहेंगे। जिस ज्ञान की कमी को किसी यरोपीय यात्री में पाकर वह कोई संतोष या आश्चर्य नहीं प्रकट करेंगे. उसी कमी को भारतीय धमक्कड़ में देखकर उन्हें आश्चर्य और ग्लानि भी हो सकती है। इसलिए हमारे धमक्कड़ को पहले ही से आव-श्यक हथियारों से लैस होकर जाना चाहिए।

इतिहास के निर्माण में लिखित सामग्री का भी उपयोग होता है। प्रत्येक सभ्य देश में कितने ही पूर्ण-श्रपुर्ण इतिहास-ग्रन्थ पुराने काल से लिखे जाते रहे हैं। ऐसे प्रन्थों का महत्व कम नहीं है, किन्तु इतिहास की सबसे ठांस प्राकृतिक सामग्री समकालीन श्रीभिलेख श्रीर सिक्के होते हैं। वैसे ईंटें श्रीर मूर्तियां भी महत्व रखती हैं, किन्तु वह काल के बारे में शताब्दी के भीतर का निश्चय नहीं कर सकतीं, जब कि श्रीभिलेख, सिक्के

श्रपनी बदलती लिपि के कारण समय का संकेत स्पष्ट कर देते हैं, चाहे उनमें सन्-संवत् न भी लिखा हो। बृहत्तर भारत के देशों में वही लिपि प्रचलित थी, जो उस समय हमारे देश में चलती थी। जिनको पुरा-लिपि से प्रेम है, उन्हें तो बृहत्तर भारत में जाते समय पुरा-लिपि का थोड़ा ज्ञान कर लेना चाहिए, श्रौर यदि ब्राह्मी-लिपि से जितनी लिपियां निकली हें, उनका चार्ट पास में मौजूद हो तो श्रोर श्रच्छा है। यह ज्ञान सिर्फ श्रपने संतोष श्रौर जिज्ञासा-पूर्ति के लिए सहायक नहीं होगा, बल्कि इसके कारण वहां के लोगों के साथ हमारे धुमक्कड़ की बहुत श्रासानी से श्रात्मी-यता हो जायगी।

वास्तु-निर्माण श्रोर उसकी ईंट-पत्थर की सामग्री इतिहास के ज्ञान में सहायक होती है। बृहत्तर भारत में ईसा की प्रथम शताब्दी से ११ वीं शताब्दी तक भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों से धर्मोपदेशक, क्यापारी श्रोर राजवंशिक जाते रहे तथा उन्होंने वहाँ की वास्तुकला के विकास में भारी भाग लिया था। वास्तुकला का साधारण परिचय तुलना करने के लिए श्रपेचित होगा। बृहत्तर भारत में जिन लोगों ने पुरातस्व या वास्तुकला के सम्बन्ध में श्रनुसंधान किया है, उनको हमारे देश का उतना ज्ञान नहीं रहा कि वह सब चीजों की गहराई में उतर सकें, यह हमारे श्रुमक्कड़ को ध्यान में रखना चाहिए।

किसी भी बौद्ध देश में जाने वाले भारतीय घुमक्कड़ के लिए श्रावश्यक है कि वह जाने से पूर्व भारत, बृहत्तर भारत तथा बौद्ध साहित्य श्रीर इतिहास का साधारण परिचय कर ले श्रीर बौद्ध-धर्म की मोटी-मोटी बातों को समम ले। कितने ही हमारे भाई उत्साह के साथ बौद्ध-देशों में जा बुद्ध के प्रति श्रपनी श्रद्धा—जो सचमुच बनावटी नहीं होती—दिखलाते हुए ईश्वर, परमात्मा, यज्ञ-हवन की बातें कर डालते हैं। उन्हें मालूम नहीं कि इन विवादास्पद बातों के विरुद्ध भारत में बौद्धों की श्रीर से बहुत-से पौद प्रन्थ जिले गए, जिनमें से कितने ही बौद्ध देशों में श्रनुवादित हो मौजूद ही नहीं हैं, बिश्व श्रव भी वहाँ के विद्वान उन्हें पढ़ते हैं। तिब्बत का थोड़ा-सा भी अपने शास्त्र को पढ़ा हुआ विद्वान धर्मकीर्ति के इस श्लोक को जानता है—

> "वेद प्रामाएयं कस्यचित् कर्णुवादः स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः। संतापाराम्भः पापहानाय चेति व्यस्तप्रज्ञानां पंच लिंगानि जाड्ये॥"

किसी विद्वान के सामने यदि कोई भारतीय वुमक्कड़ अपने को बुद्ध-प्रशंसक ही नहीं बौद्ध कहते हुए हन पाँचों वेवक्र्षियों में से किसी एक का समर्थन करने लगे, तो वहाँ का विद्वान अवस्य मुस्करा देगा। बहुत-से हमारे भाई अपनी मनगढ़न्त धारणा के कारण समक्ष बैटते हैं कि बौद्ध अम में हैं, और उनकी अपनी धारणाएं सही हैं। लेकिन उनको स्मरण रखना चाहिए कि बुद्ध की शिचा क्या थी, इसकी जानकारी के सारे साधन बौद्धों के पास हैं, इसकी सारी परम्पराएं उनके पास हैं, और बौद्ध-धर्म को उन्होंने जीवित रखा। हमारे यहाँ जब बौद्ध-धर्म के दस-धीस मन्य भी नहीं बच रहे, उस समय भी चीन और तिब्बत ने हमारे यहाँ से विद्युप्त आठ-दस हजार अन्थों को अनुवाद रूप में सुरचित रखा। इसिलए अपने अधिकार और विचार के रोब जमाने का ख्याल छोड़कर यदि घुमक्कड़ थोड़ा-सा बौद्ध धर्म के बारे में जानन्नेने की कोशिश करे, तो उपहासास्पद गलतियाँ करने से बच जायगा, चाहे पीछे वह बौद्ध-दर्शन का खंडन भी करे।

हरेक गन्तस्य देश के संबंध में तैयारी भी श्रलग-श्रलग तरह

१ प्रमाण्यार्त्तिक १ ।३४ (१) वेद को प्रमाण मानना, (२) किसी (ईश्वर) को कर्त्ता कहना, (३) (गंगादि) स्नान से धर्म चाहना, (४) (छोटी-चड़ी) जाति की बात का श्रमिमान करना, (५) पाप नष्ट करने के लिए (उपवास श्रादि) करना—ये पाँच श्रकलमारे हुश्रों की जड़ता के चिन्ह हैं।

की होगी। यह आवराक नहीं है कि एक-एक देश को देखकर धुमक्कड़ फिर भारत लौटकर तैयारी करे। जिसने यहां रहकर २०-२१ वर्ष तक आवश्यक शिचा समाप्त कर ली और कालेज के पाठ्यकम तथा बाहर से धुमक्कड़ी से संबंध रखने वाले विषयों की पुस्तकों को पढ़ लिया है, यदि वह छ साल लगा दे तो सिंहल, बर्मा, स्याम, भलाया, सुमान्ना, जावा, बालां, कंबोज, चम्पा, तोङ्किन, चीन, जापान कोरिया, मंगोलिया, चीनी तुर्किस्तान और तिब्बत की यात्रा एक बार में पूर्ण कर भारत लोट आ सकता है, और इतनी बड़ी यात्रा के फल-स्वरूप हमारे देश को ज्ञानपूर्ण अन्थ भी दे सकता है।

उपरोक्त देशों में जिन साधनों की आवश्यकता है, वही साधन सभी देशों में काम नहीं आ सकते। रूस और पूर्वी यूरोप की जानकारी के साधनों का संचय तो होना ही चाहिए, साथ ही यदि धुमक्कड़ संस्कृत के भाषा-तत्व का ज्ञान रखता है, तो स्लाव-भाषाओं के महत्व को ही नहीं समस्र सकता, बिल्क स्लाव-जातियों के साथ आत्मीयता का भाव भी पैदा कर सकता है। किसी जाति के इतिहास के जानने से ही आदमी उस जाति को समस्र सकता है। जातियों के प्राग्-ऐतिहा-सिक ज्ञान के लिए भाषा बड़ा महत्व रखती है।

इस्लामी देशों में घुमक्दड़ी करने वाले तरुणों को इस्लाम के धर्म और इतिहास का परिचय होना चाहिए। साथ ही जहां अधिक रहना हो, वहां की भाषा का भी परिज्ञान होना जरूरी है। परिचमी एसिया और मध्य एसिया की मुस्लिम जातियों के साथ अधिक सुभीते से परिचय करने के लिए केवल तीन भाषाओं की आवश्यकता होगी— तुशी, फारसी और अरबी। संस्कृत जानने वाले के लिए भाषातस्व की कुंजी के साथ फारसी बहुत सुगम हो जाती है।

भाषा-तत्व, पुरातत्व आदि बातों पर ध्यान आकृष्ट करने का यह अर्थ नहीं कि जब तक ब्यक्ति इन विषयों पर अधिकार प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक वह घुमक्कड़ बनने का अधिकारी नहीं। घुमक्कड़-

शास्त्र सभी रुचि श्रीर चमता वाले भावी वुमक्कड़ों के लिए लिखा गया है, इसलिए इसमें श्रधिक-से-श्रधिक वातों का समावेश है, जिसका यह श्रर्थ नहीं कि श्रादि से इति तक सभी चीजें हरेक को जान कर ही घर से पेर निकालना चाहिए। घुमक्कड़ की दुनिया में भय का नाम नहीं है, फिर मृत्यु की बात कहना यहां अवासंशिक-सा मालूम होगा। तो भी मृत्यु एक रहस्य हैं, घुमक्कड़ को भी उसके बारे में कुछ अधिक जानने की इच्छा हो सकती है। आखिर घुमक्कड़ भी मनुष्य दें और मनुष्य की निर्वेलताएं कभी-कभी उसके सामने भी आती हैं। मृत्यु अवश्यस्मावी है -- ''जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु:।" एक दिन जब मरना ही है, तो यही कहना ह—

"गृहित इव केरोष मृत्युना धर्ममाचरेत्।"

सत्यु की श्रानवार्यता होने पर भी कभी-कभी श्रादमी को कल्पना होने लगती है—काश! यदि मृत्यु न होती। प्राणियों में, यद्यपि कहा जाता हैं, सबके ही लिए मृत्यु है, तो भी कुछ प्राणी मृत्यु जय हैं। ऐसे प्राणी श्रंडज, उप्मज श्रीर जरायुजों में नहीं मिलते। मनुष्य का शरीर श्ररबों छोटे-छोटे सेलों (जीवकोषों) से मिलकर बना है, किन्तु कोई-कोई प्राणी इतने छोटे हैं कि वह केवल एक सेल के होते हैं। ऐसे प्राणियों में जन्म श्रीर वृद्धि होती है, किन्तु जरा श्रीर मृत्यु नहीं होती। श्रामोयबा एक ऐसा ही प्राणी समुद्द में रहता है, जो जरा श्रीर मृत्यु से परे है, यदि वह श्रकालिक श्राधात से बचा रहे। श्रामोयबा का शरीर बढ़ते बढ़ते एक सीमा तक पहुंचता है, फिर वह दो शरीरों में बंट जाता है। दोनों शरीर दो नये श्रामोयबों के रूप में बढ़ने लगते हैं। मनुष्य श्रामोयबा की तरह विभक्त होकर जीवन श्रारम्भ नहीं कर सकता, क्योंकि वह एक सेल का प्राणी नहीं है। मीटे पानी में एक श्रस्थिरहित

वाणी प्रनारियन मिलता है, जो श्राध इ'च से एक ह'च तक लम्बा होता है। फ्रनारियन में श्रस्थि नहीं है। श्रस्थि की उसी तरह हास-बृद्धि नहीं हो सकती जैसे कोमल मांस की। जब हम भोजन छोड़ देते हैं, तब भी श्रपने शारीर के मांस श्रीर चवों के बल पर दस-बारह दिन तक हिल-डोल सकते हैं। उस समय हमारा पहले का संचित सांस-चर्बी भोजन का काम देती है। प्रनारियन को जब भोजन नहीं मिलता तो उसका सारा शरीर श्रावश्यकता के समय के लिए संचित भोजन-भगडार का काम देता है; ग्राहार न मिलने पर ग्रपने शरीर के भीतर से वह खर्च करने लगता है। उसके शरीर में हड़ी की तरह का कोई स्थायी ढाँचा नहीं है. जो श्रपने को गलाकर न श्राहार का काम दे, श्रीर उलटे जिसके लिए श्रीर भी श्रुलग श्राहार की श्रावश्यकता हो। प्रनारियन श्राहार न मिलने के कारण अपने शरीर को खर्च करते हुए छोटा भी होने लगता है: छोटा होने के साथ-साथ उसका खर्च भी कम होता जाता है। इस तरह वह तब तक मृत्यु से पराजित नहीं हो जाता, जब तक कि महीनों के उप-वास के बाद उसका शरीर उतना छोटा नहीं हो जाता, जितना कि वह श्रंडे से निकलते वक्त था। साथ ही उस जन्तु में एक श्रौर विचित्रता है-- ग्राकार के छोटे होने के साथ वह ग्रपनी तरुगाई से बाल्य की श्रोर- चेष्टा श्रौर स्फूर्ति दोनों में- लौटने लगता है। उपवास द्वारा खोई तरुणाई को पाने के लिए कितने ही लोग लालायित देख पड़ते हैं श्रीर इस लालसा के कारण वह बच्चों की-सी बातों पर विश्वास करने के लिए तैयार हो जाते हैं। मनुष्य में प्रनाश्यिन की तरह उपवास द्वारा तरुणाई पाने की समता नहीं है। विद्वानों ने उपवास-चिकित्सा कराके बहुत बार प्रनारियन को बाल्य श्रीर प्रौढ़ावस्था के बीच में घुमाया है। जितने समय में श्रायु के चय होने से दूसरों की उन्नीस वीदियाँ गुजर गईं, उतने समय में एक हुनारियन उपवास द्वारा बाल्य श्रीर तरुगाई के बीच बूमता रहा। शायद बाहरी वाधाश्रों से रचा की जाय तो उन्नीस क्या उन्नीस सौ पीढियों तक प्रनारियन को उपवास द्वारा जरा श्रीर मृत्यु से रिचत रखा जा सकता है। मनुष्य का यह मारी-भरकम स्थायी हिंडुयों श्रीर श्रस्थायी मांस वाजा शरीर ऐसा बना हुश्रा है कि उसे जराहीन नहीं बनाया जा सकता, इसीजिए मानव मृत्यु जय नहीं हो सकता।

मृत्युं जयकी कल्पना गलत है, किन्तु सवासौ-डेड्सों साल जीने वाले श्रादमी तो हमारे यहाँ भी देखे जाते हैं। बहुत-से प्रौढ़ या बृद्ध जरूर चाहेंगे कि श्र-छा होता, यदि हमारी श्रायु डेड्सों साल की ही हो जाती। वह नहीं सममते कि डेड्सों साल की श्रायु एकाध श्रादमी की होती तो दूसरी बात थी, किन्तु सारे देश में इतनी श्रायु होनी देश के लिए तो भारी श्राफत है। डेड्सों साल की श्रायु का मतलब है श्राठ पीड़ियों तक जीवित रहना। श्रभों तक हमारे देश की श्रोसत श्रायु तीस बरस या डेड् पीड़ी है, श्रोर हर साल पचास लाख मुंह हमारे देश में बड़ते जा रहे हैं। यदि लोग श्राठ पीड़ी तक जीते रहे, तब तो दो पीड़ी के भीतर ही हमारे मैदानों श्रोर पहाड़ों में सभी जगह घर ही घर बन जाने पर भी लोगों के रहने के लिए जगह नहीं रह जायगी, खाने-कमाने की भूमि की तो बात ही श्रलग।

यदि इतनी पीदियां इकट्टी हो जायंगी, तो अगली पीदी के लिए जीना दूभर हो जायगा। हम बीस बरस के तहरण-तहरणी की अपने चालीस साल के माता-पिता के साथ मुश्किल से निभते देखते हैं, दोनों के स्वभाव और हिन में अन्तर माल्म होता है। चालीस वाले माता-पिता अपनी तहरण सन्तान की बेसमभी और उतावलेपन की शिकायत करते हैं, और वहरण उन्हें समय से पिछड़ा मानते हैं। साठ बरस के दादा-दादी की तो बात ही मत पूछिए। पहली और तीसरी पीदी का भारी अन्तर बहुत स्पष्ट दिखलाई पड़ता है और वह इसीलिए एक साथ गुजर कर लेते हैं कि साथ अधिक दिन का नहीं होता। तीसरी पीदी में जो भारी पश्चितंत्र देखा जाता है, उसे आठवीं पीदी से मिलानेपर पता लग जायगा कि मनुष्य की ऐसी चिरजीविता अच्छी नहीं है। चीथी पीदी को देखने के लिए

बहुत कम बूढ़े-बूढ़ियाँ जीवित रहते हैं। वीसरी पीढ़ी को भी संसार संभाले बहुत कम देख पाते हैं। एक वृद्ध को मैं जानता था, वह संस्कृत के धुरंघर विद्वान श्रौर बाह्यगों के खटकमें तथा छूत्राछूत के पचपाती थे। उन्होंने अपने पुत्र को भी संस्कृत पढ़ाया और श्रपनी सारी बातें सिख-लाई', किन्तु बाजार-भाव श्रव्छा होने के कारण श्रं प्रोजी भी पढ़ाई। अब वह एक बड़े कालेज में अध्यापक हैं। उनके पिता अब नहीं हैं, लेकिन यदि परलोक के मरोखे से वह कभी अपने पुत्र की रसोई की श्रोर मांकें, जहां हिरख्यगर्म (जिसके भीतर हिरख्य श्रर्थात् पीला पदार्थ है—श्रग्दः) की श्रनन्य उपासना हो रही है तो क्या समर्सेगे १ श्रीर श्रभी ता यह परिडतजी की दूसरी पीड़ी है। वीसरी पीड़ी का चार-पांच बरस का बच्चा हिरएयगर्भ की उपासना के वातावरण में पैदा हुआ है, वह कहां तक जायगा, इसको कौन कह सकता है ? एक दूसरे मेरे सौभाग्यशाली वृद्ध मित्र हैं, जिन्होंने पुत्रों की चार पीढ़ियां देख ली हैं, पुत्रियों की शायद पांच पीढ़ी भी हो गई हों। श्रस्ती बरस के ऊपर हैं। खैरियत यही है कि पैंतीस साज से उन्होंने सन्यास जे रखा है श्रीर घर पर कभी-ही-कभी जाते हैं। जब जाते हैं तो उनके बीतराग हृद्य में कुफ्त हुए बिना नहीं रहती। वह गांधी युग के पहले से ही हर चीज में सादगी को पसंद करते थे श्रीर धर्मभीहता के लिए तो कहना ही क्या ? कोई जीविकार्वात्त की श्राशा न होने पर भी उन्होंने श्रपने एक पुत्र को संस्कृत पढ़ाया। लंकिन पुत्र के पुत्रों के बारे में मत पुछिए। श्राजकल के युग के श्रनसार पात्र बड़े सशील श्रीर सदाचारी हैं, किन्त दादा की दृष्टि से देखें तो उन्हें यही कहना पड़ता है-भगवान् ! श्रौर श्रव यह सब श्रधिक न दिखलाश्रो। उनके घर में साबुन का खर्च बढ़ गया है, तेल-फुलेल का तो होना ही चाहिए; चप्पल श्रीर ज्ते की भी महिलात्रों को त्रत्यन्त त्रावश्यकता है। श्रीर तीसरी पीड़ी के साहबजादों का चाय के बिना काम नहीं चलता । चाय भी पूरे सेट में होनी चाहिए श्रौर ट्रेमें रखकर श्रानी चाहिए। वृद्ध मित्र कह रहे थे--"यह सब फज्लसर्ची

है. लेकिन इन्हें समसावे कोन?", श्रीर पौत्र कह रहा था-"रहने दीजिये श्रापके यग का भी हमें ज्ञान है, जब एक या दो साड़ी में स्त्रियां जिन्दगी बिताती थीं। आज हमारी किसी स्त्री के द्रंक को खोलकर देख लीजिए. बहुत श्रन्छी किस्म की श्राठ-श्राठ दस-दस साड़ियों से कम किसीके पास नहीं हैं।" वृद्ध की सूखी हड्डियां यह कहते हुए कुछ श्रीर गर्म हो उठीं-"यह तो और फजलखर्ची है।" तीसरी पीढ़ी ने कहा-''जो श्रापकी पीढ़ी के लिए फजूललचीं थी, वह हमारे लिए त्रावश्यक है। श्राप की न जाने कई दर्जन पीढ़ियों ने मांस का नाम सुनकर भी राम-राम कहा होगा श्रौर हमारी चाय ही ठीक नहीं जमती, यदि हिरएयगर्भ भगवान् तरतरी में न पधारें।" वृद्ध दादा के लिए श्रब बात सनने की सीमा से बाहर हो रही थी। उनके हटते ही मैं भी साथ देने चला गया। उनके हार्दिक खेद की बात क्या पूछते हैं ! मैंने उनसे कहा-"श्राप भी जब पिछली शताब्दी के अन्त में आर्यसमाजी बने. तो सभी गांव के लोगों ने नास्तिक कहना शुरू किया था। यदि छुत्राछत को हटा दिये होते तो निश्चय ही जात में ब्याइ-शादी हक्का-पानी सब बनद हो गया होता। श्रापने जो उस समय किया था. वही उस समय के लिए भारी क्रांति थी। श्रापने पत्नी को भी जनेऊ दिलवाया, दोनों बैठकर हवन-संध्या करते थे, लेकिन इसे भी उस समय के सनातनी श्रच्छी दिष्ट से नहीं देखते थे । जाने दोजिए, जो जिसका जमाना है वही उसकी जवाबदेही को संभाले।"

स्त्रियों की बात लीजिए। मैं मेरठ की स्त्रियों के बारे में कहूँगा, जिनका मुक्ते तास बरस का ज्ञान है—तेईस-चौबीस बरस का तो विजकुल प्रत्यच ज्ञान। वर्त्तमान शताब्दी का जब पह फटा, तो मेरठ के मध्यम वर्ग में एक विचित्र प्रकार की खलबजी मची हुई थी। कितने ही साचर श्रौर शिचित पुरुषों ने ऋषि द्यानन्द की पाख्य उन्हाई थी। सनातनी पंडितों ने ब्यवस्था दी थी—

"स्त्री शुद्रौ नाधीयेताम्" अर्थात स्त्रियों श्रौर शुद्रों को विद्या नहीं

पढानी चाहिए । स्वामी दयानन्द ने इसे पोप-खीला कहा था । पाखएड-खरडनी वाले भक्तों ने स्त्रियों को पढ़ाने का बीडा उठाया था। बीडा घर से ही श्रारम्भ हो सकता था। उस पीढ़ी का श्राप्रह श्राज की दृष्टि से कुछ भी नहीं था। वे स्त्रियों को अंग्रेजी पढ़ाने के विरोधी थे. श्रीर चाहते थे कि उन्हें संध्या-गायत्री करने तथा चिट्टी-पत्री लिखने-भर को श्रार्यभाषा (हिन्दी) श्रा जानी चाहिए। परम लच्य इतना ही था, कि हो सके तो गृहकार्य में निप्रण होने के बाद स्त्रियां वेद-शास्त्र की बातें भी कुछ जान लें। पहली पीढ़ी की, जो प्रथम विश्व-युद्ध के समय तैयार हुई थी, श्रार्थ- ललनाश्रों ने श्रपने नवशिचित तरुण पतियों के संसर्ग से कुछ श्रौर भी श्रागे पढ़ना पसन्द किया, उनकी लड़कियों में कोई-कोई कालेज तक पहुँच गईं। इन लड़कियों ने गांघीजी के दो युद्धों में भी भाग लिया श्रीर श्रांगन से ही बाहर नहीं जेलों की भी हवा खा श्राई। श्राज श्रार्य ललनाओं की तीसरी पीड़ी तैयार है श्रीर उनमें से बहुतेरी यूरोपीय जलनात्रों से एक तल पर मुकाबला कर सकती हैं-श्रन्तर होगा तो केवल रंग और साड़ी का। श्रार्य ललनाओं की सासें यदि श्रव तक जीवित रहतीं, तो जरूर उन्हें श्रात्म-हत्या करनी पड़ती। बूढ़ी श्रार्य ललनाएं कहीं एकाध बच पाई हैं, उनकी श्रवस्था हमारे मित्र वृद्ध स्वामी जी से कम दयनीय नहीं हैं। श्रीर श्रव तो जब कि वर्त्तमान पीढ़ी के तरुग-तरुगी ब्याह-शादी में वृद्धों के दखल को ग्रसहा मानते, जात-पांत श्रीर दूसरी बातों का ख्याल ताक पर रखके मनमानी कर रहे हैं. तो श्रार्य जलनाश्रों की अवस्था क्या होगी, इसे कहने की श्रावश्यता नहीं । हम समक्रते हैं कम-से-कम श्रीर नहीं तो इन पुरानी पीड़ियों को भर्यकर सासत से बचाने के लिए ही मृत्यु को न श्राने पर बुलाकर लाने की जरूरत पहेगी।

वस्तुतः प्रथम श्रोणी का घुमक्कड वृद्धों के सिठयाने का पचपाती नहीं हो सकता। वह यही कहेगा कि इन फोसीजों का स्थान जीवित मानव-समाज नहीं, बल्कि म्यूजियम है। यदि फोसीजों का युग होता तो घुमक्कड़ शास्त्र लिखने वाले के ऊपर क्या बीतती, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। इन पंक्तियों का लेखक वृद्धों का शत्रु नहीं हितेषी है। उनके हित पर विचार करके ही वह सममता है कि समय बीत जाने के बाद उस चीज के जिए यही अच्छा है कि लोगों की दृष्टि से श्रोमल हो जाय।

मृत्यु को नाहक ही भय की वस्तु समका जाता है। यदि जीवन में कोई श्रिय वस्तु है तो वह वस्तुतः मृत्यु नहीं है, मृत्यु का भय है। मृत्य के हो जाने के बाद तो वह कोई विचारने की बात ही नहीं। मृत्यु जिम वक्त त्राती है, श्राम तौर से देखा जाता है कि मुच्छी उससे कुछ पहले ही पहुँच जाती है, श्रीर मनुष्य मृत्यु के हरावने रूप को देख ही नहीं पाता: फिर भय और श्रिप्रय घटना का सवाल ही क्या हो सकता है ? मृत्यु अपने रूप में तो कहीं कोई अप्रियता नहीं बाती। मृत्यु को दरश्रसल जिस तरह साधारण बातचीत में हम श्रप्रिय समम्तते हैं, वह ऐसी श्रप्रिय नहीं है। कितनी बार साधारण श्रादमी भी जीवन छोड़ मृत्यु को पसन्द करता है। कोई श्रपने सम्मान के लिए मृत्यु का आलिंगन करता है, कोई देश-समाज के लिए मृत्यु को स्वीकार करता है। खुदीराम बोस ने जब पहले-पहल देश की स्वतन्त्रता के लिए तरुकों को सर्वस्व उत्सर्ग का रास्ता दिखलाते हुए मृत्यु को चुना, तो क्या त्राखिरी घड़ी तक कभी उस तहता के हृद्य में श्रफसोस या ग्लानि हुई ? सुदीराम के बाद सैकड़ों तरुणों ने उसी पथ का श्रनुसाण किया। भगतसिंह के लिए क्या मृत्यु कोई चीज थी ? खदीराम श्रीर उनके नंजदीकी वीरों को यह विश्वास करके भी सान्त्वना हो सकती थी, कि वह गीता के श्रनुसार मरकर फिर जन्म लेंगे श्रीर फिर देश के लिए बलिदान होंगे; लेकिन भगतसिंह को तो ऐसा कोई विश्वास नहीं था। द्वितीय विश्व-युद्ध में रूस के लाखों तरुया-तरुशियों ने मृत्यु से परिहास किया। इससे साबित हो जाता है कि मृत्यु वैसी भयंकर चीज नहीं है. जैसा कि लोग सममते हैं। धुमकड़ तरुण तो इन लाखों पुरुषों में सबसे निर्भीक व्यक्तियों की श्रीणी में हैं; उसको क्यों मृत्यु की चिन्ता होने लगी?

मृत्यु के साथ ही आदमी को कीर्ति का ख्याल आता है। जीवित श्रवस्था की कीर्ति को-जो मरने के बाद भी जीवित रहती है-कितने ही तो कीर्ति-क्लेवर कहते हैं: अर्थात् इसी भौतिक शरीर का वह श्रागे बढ़ा हुआ शरीर कीर्ति के रूप में है। कीर्ति का ख्याल बुरा नहीं है, क्योंकि इससे ग्रादमी वैयक्तिक स्वार्थ से ऊपर उठता है, वह अपने वर्त्तमान के लाभ को तिलांजिल देता है। यह सब कुछ कीर्ति-लोभ के लिए करता है। कीर्ति-लाभ मनुष्य को बहुत-से सुकर्मों के लिए प्रेरित करता है। कई शताब्दियों तक खड़े रहने वाले अजनता. एलोरा. भाजा और कार्ले के गुहापासाद, यद्यपि आज लोगों के रहने के काम नहीं ग्राते. लेकिन शताब्दियों तक वह निवास-गृह की तरह इस्तेमाल होते रहे। यह लाभ कई पीढियों को उनके निर्माताओं की कीति-लिप्सा के कारण ही हो पाया। जब हम कला, वास्तुशास्त्र श्रौर सांस्कृतिक हष्टिकोण से देखते हैं. तब तो कीर्ति लोभ का महत्व और अधिक जान पडता है। यद्यपि कितनी ही अचल कीतियों के बारे में नाम अमर होने की बात अम सिद्ध होती है, जब कि हम कत्ती का नाम तक नहीं जानते । भारतवर्ष के कितने ही स्तम्भों, स्तूपों और गुहा-प्रासादों की यही बात हैं सभी पर श्रशोक के शिला-स्तम्भों की भांति श्रभिलेख नहीं हैं, श्रीर कितनों को हम कल्पना से नाम देना चाहते हैं। हम साधा-रण श्रादिमयों के इस अम को हटाना नहीं चाहते, कि ऐसे काम से उनका नाम श्रमर होगा। सन्तान के द्वारा श्रमर होने की धारखा लोगों के हृद्यों में कितनी बद्धमूल है, जबकि यह सभी देखते हैं कि अपने परदादा का नाम बिरले ही लोग जानते हैं।

पाषाण श्रीर धातु की बनी कीर्तियों से श्रमर होने की इच्छा सभी देशों में बहुत पुरानी है। श्रब भी वह धारणा उसी तरह चली श्राती हैं। हमारे कितने ही सेठ श्रजनता, एलोरा, सुवनेश्वर श्रीर कोना- रक की अचल की तियों को देख अपना नाम अमर करने की इच्छा से कितने ही सीमेंट, और ईट के तड़क-मड़क वाले मन्दिर बनवाते हैं। कितने अपनी पुस्तकों के छप जाने से समक्कते हैं कि वह अश्ववीष और कालिदास हैं। आज की पुस्तक जिस कागज पर छपती हैं, वह इतना भंगुर है कि पुस्तक सौ बरस भी नहीं चल सकती। छापा-खानों ने पुस्तकों का छपना जितना आसान कर दिया है, उसके कारण प्रतिवर्ष हजारों नई पुस्तकें छप रही हैं, जिनकी संख्या शिना-अचार के साथ प्रति शताब्दी लाखों हो जायगी। हजार वर्ष बाद इन पुस्तकों की रन्ता के लिए जितने घरों की आवश्यकता होगी, उनका बनाना सम्भव नहीं होगा। सच तो यह है कि हरएक पीढ़ी का अगली पीढ़ी पर अपनी अमरता को लादना उसी तरह की अबुद्धिपूर्वक भावना है, जैसी हमारे दस पीढ़ियों की पूर्वजों की यह आशा—कि हम उनके सारे नामों को याद रखेंगे—जो कि कछ सम्भव भी है. यदापि बेकार है।

श्राज बीसवीं शताब्दी श्राधी बीत रही है, क्या श्राप श्राशा रखते हैं कि इन पचात वर्षों में जितने पुरुषों ने भिन्न भिन्न चेत्रों में महत्व-पूर्ण कार्य किया है, उनमें से दस भी ६६४६ ईसवी में श्रमर रहेंगे। गांधीजो, रवीन्द्र श्रोर रामानुजम् का नाम रह जायगा, बाकी में यदि दो-तीन श्रोर श्रा जायें तो बहुत समिक्ष्ण, लेकिन उनका नाम हम श्राप बतला नहीं सकते। इतिहास का फैसला श्रांखों के सामने नहीं होता। वह उस समय होता है जबिक कोई सिफारिश नहीं पहुंचाई जा सकती। कभी-कभी तो फैसला बड़ा निष्ठुर होता है। संस्कृत के महान् किवयों श्रोर विचारकों में जो हमारे सामने मौजूद हैं, क्या उनसे बेहतर या उनके जैसे श्रोर नहीं रहे, गुणाढ्य की बृहत्कथा क्यों लुप्त हो गई? क्या उसके संस्कृत श्रनुवादों को देखने से पता नहीं लगता, कि वह बड़ी डरकृष्ट कृति रही होगी। बहुतों की महाकी तियाँ तो वर्ग-पत्तपात के कारण मिट गईं। क्या हमारे शाचीन किवयों श्रोर लेखकों में सभी सामन्तों के गुण गानेवाले ही रहे होंगे? हजार में दस-पाँच ने श्रवश्य

उनके दोषों को भी दिखलाया होगा और साधारण जनता के हित को सामने रखा होगा; लेकिन सामन्ती संरचकों ने ऐसी कृतियों को अपने पुस्तकालयों में रहने नहीं दिया, उनके अनुचर विद्वानों ने भी प्रश्रय नहीं दिया। आज हम युगपरिवर्तन के सन्धिकाल में हैं। पिछली शताब्दी और वर्त्तमान के चौदह सालों में रूस में जिन्हें महाप्रतापी सममा जाता था, उनमें बहुत से हमारे सामने मर गए। चीन का इतिहास भी उसी तरह फिर से लिखा जा रहा है, जिसमें अमर चाड़केशक की क्या गत होगी, यह आप स्वयं समम सकते हैं। भारत में भी कितने ही अमर होने के इच्छुक बहुत जल्द भुला दिये जायंगे। कितनों के मुंह के ऊपर इतिहास इतना काला पुचारा फेरेगा, जिससे उनका मर जाना ही अच्छा होता।

धुमकड़ वीरों को वस्तुतः न श्रमरता का लोभ होना चाहिए. न हजारों बरस तक लम्बे कीर्ति-कलेवर की बिप्सा ही। इसका यह श्रर्थ नहीं कि उन्हें श्रकीतिं की जिप्सा होनी चाहिए। उन्हें जनहित का कार्य करना है, समाज और विश्व को आगे ले चलना है। यदि इन कामों में उनकी कुछ भी शक्ति सफल रही. तो वह अपने को कृतकृत्य समर्सेंगे। जिस तरह सरोवर में डला फेंकने पर लहर उठती है, फिर वह एक लहर से दूसरी लहर को उठाती स्वयं विजीन हो जातीहैं, किन्तु लहरों का सिलसिला श्रागे बढ़ता जाता है, इसो तरह घुमक्कड़ मानव-हित के लिए जहर उठाता है, जो अपने अन्तर्धान होने से पहले यदि दूसरी लहर उठा देती है, तो उसे उसकी सफलता कहनी चाहिए। कोई-कोई ग्रारम्भिक लहरें श्रविक शक्तिशाली होती हैं श्रीर कोई कम शक्ति-शाली। श्रादमी के कृतित्व का मूल उसकी उठाई लहरों की शक्तिशालिता है। निर्माण का विचार सबसे सुन्दर है। बिना श्रपने कलेवर को श्रागे बढ़ाये, श्रपने जीवित समय में विश्व को कुछ देना फिर सदा के लिए शून्य में विजीन हो जाना, यह कल्पना कितनों के लिए श्रनाकर्षक मालूम होगी। किन्तु कितने ही ऐसे भी विचारशील हो सकते हैं जो श्रपना काम करने के बाद बालू के पदिचन्ह की भाँति विलीन हो जाने के विचार से भयभीत नहीं, बिल्क प्रसन्न होंगे। श्राखिर काल पाँच-इस हजार बरस की श्रविध नहीं रखता। यह हमारी घड़ी के सेकेन्ड की सुई एक मिनट में श्रपना एक चक्कर पूरा करती है, एक जीवन के साट बरसों में कितनी बार वह चक्कर काटेगो? काल की घड़ी की सुई तो कभी थम नहीं सकती। सेकन्ड मिलकर मिनट, मिनट मिलकर घंटा, फिर दिन, मास, वर्ष, शताब्दी, सहस्राब्दी, लचाब्दी, कोड्याब्दी, श्ररबाब्दी होती चली जायगी। श्राज के सेकन्ड से श्ररबाब्दी तक यह काल श्रविच्छिन्न प्रवाह सा चलता चला जायगा। श्रमरत्व के भूखों को यदि इन सहस्राब्दियों में दौड़ने को छोड़ दिया जाय, तो किसी की कल्पना भी इस हजार बरस तक भी उसे श्रमरत्व नहीं दिला सकती, फिर श्रनविकान में सदा श्रमर होने की कल्पना साहस मात्र है। श्रन्त में तो किसी श्रविध में जाकर बालू पर का चरणचिन्ह बनना ही पड़ेगा। जब इस प्रथ्वी पर जीवन का चिन्ह नहीं रह जायगा, तो श्रमरकीति की क्या बात हो सकती है?

ं घुमक्कद मृत्यु से नहीं उरता। घुमक्कद सुकृत करना चाहता है, लेकिन किसी लोभ के वश में पड़कर नहीं। उसने यहाँ जन्म लिया है, उसका स्वभाव मज़बूर करता है, कि अपने आसपास को शक्ति-भर स्वच्छ और यसन्न रखे। वह केवल कत्तव्य और आत्म-नुष्टि के लिए महान् से-महान् उत्सर्ग करने के लिए तैयार होता है। बस, यही होना चाहिए घुमक्कड़-परिवार का महान् उहेश्य।

## लेखनी ऋौर तूलिका

मानव-मस्तिष्क में जितनी बौद्धिक चमतायें होती हैं, उनके बारे में कितने ही लोग समकते हैं कि "ध्यानावस्थित तदुगत मन" से वह खुल जाती हैं। किन्तु बात ऐशी नहीं है। मनुष्य के मन में जितनी करपनायें उठती हैं, यदि बाहरी दुनिया से कोई सम्बन्ध न हो, तो वह बिलकुल नहीं उठ सकतीं; वैसे ही जैसे कि फिल्म-भरा कैमरा शटर खोले बिना कुछ नहीं कर सकता। जो श्रादमी श्रंधा श्रीर बहरा है. व गंगा भी होता है। यदि वह बचपन से ही श्रपनी ज्ञानेन्द्रियों को खो चका है, तो उसके मस्तिष्क की सारी इमता धरी रह जाती है, श्रौर वह जीवन-भर काठ का उल्लू बना रहता है। बाहरी दुनिया के दर्शन श्रीर मनन से मन की जमता को प्रेरणा मिलती है। चमता का भी महत्व है, यह मैं मानता हूँ, किन्तु निरपेच नहीं। हमारे महान् कियों में श्रश्वघोष तो घुमक्कड़ थे ही। वह साकेत (श्रायोध्या) में पैदा हुए, पाटलिपुत्र उनका विद्याचेत्र रहा श्रीर श्रंत में उन्होंने पुरुषपुर (पेशा-वर) को अपना कार्यनेत्र बनाया। कित्रकुलगुरु कालिदास भी बहुत वृमे हुए थे। भारत से बाहर चाहे वह न गये हों, किन्तु भारत के भीतर तो श्रवस्य वह बहुत दूर तक पर्यटन किये हुए थे। हिमालय को "उत्तर दिशा में देवात्मा नगाधिराज" उन्होंने किसीसे सुनकर नहीं कहा । हिमा-लय को उनकी श्राँखों ने देखा था, इसीलिए उसकी महिमा को वह समम याए थे। "ऋमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन" में उन्होंने देवदार को शंकर का पुत्र मानकर दुनिया के उस सुन्दरतम बृत्त की श्री की परख की। श्वेत हिमाच्छादित हिमालय श्रीर सदाहरित तुंग-शीर्ष देवदार प्राकृतिक सौंदर्य के मानदंड हैं, जिनको कालिदास घर में बैटे नहीं जान सकते थे। रघु की दिग्विजय-यात्रा के वर्णन में कालिदास ने जिन देशों के नाम दिये हैं, उनमें से कितने ही कालिदास के देखे हुए थे, श्रौर जो देखे नहीं थे, उनका उन्होंने किसी तरह श्रच्छा परिज्ञान प्राप्त किया था। कालिदास की कान्य-प्रतिभा में उनके देशाटनका कम महत्व नहीं रहा होगा। वाण—जिसके बारे में कहा गया "वाणोच्छिष्ट जगत् सर्वे" श्रौर जिसकी कादम्बरी की समकत्त्वता श्राज तक किसी प्रथ ने नहीं की—तो प्रा घुमक्कड़ था। कितने ही सालों तक नाना प्रकार के तीन दर्जन से श्रधिक कजाविदों को लिये कर्ड भारत की परिक्रमा करता रहा। दंडी का श्रपने दशकुमारों की यात्राश्रों का वर्णन भी यही बतलाता है, कि चाहे वह कांची में परुजव-शज-सभा के रत्न रहे हों, किन्तु उन्होंने सारे भारत को देखा था। इस तरह श्रौर भी संस्कृत के कितने ही चोटी के कवियों के बारे में कहा जा सकता है। दार्शनिक तो श्रपने विद्यार्थी जीवन में भारत की प्रदक्तिया। करके रहते थे, श्रौर उनमें कोई-कोई कुमारजीव, गुणवर्मा श्रादि की तरह देश-देशांतरों का चक्कर लगाते थे।

पुरानी बातें शायद भूल गई हों, इसिलए अपने वर्तमान युग के महान् किन को देख लीजिए। किनेन्द्र खोन्द्र को केवल कान्यकर्ता, अपन्यासकार और नाट्य-रचियता के रूप में ही हम नहीं पाते। उन्होंने भारत की सांस्कृतिक और बौदिक देन का बहुत अच्छा मृत्यांकन किया था। पश्चिम की चकाचौंध से उनके पैर जमीन से नहीं उखड़े और नहमारे देश की रूढ़िवादिता ने उनको अकर्मण्य बनाने में सफलता पाई। भानी भारत के लिए कितनी ही बातों का कवीन्द्र ने मानद्य स्थापित किया। शांतिनिकेतन में उस समय जो बातावरण उन्होंने तैयार किया था, वह समय से कुछ आगे अवश्य था, किन्तु हमारी सांस्कृतिक धारा से अविच्छिन था। उसके महत्व को हम अब समक सकते हैं, जबकि दिल्ली राजधानी में तित्तलों और तित्तिकथों का तृफान देखते हैं। कवीन्द्र ने साहित्यक चेत्र में सारे भारत को स्थायी

शेरणा दी, जो चिरस्मरणीय रहेगी। लेकिन उनका महान कार्य इतने ही तक सीमित न था। उन्होंने चित्रकला, मूर्तिकला, गीत, नृत्य, वाद्य, श्रमिनय को न भुला उन्हें भी उचित स्थान पर बैठाया। उनके पास साधन कम थे। संस्थाएं केवल उच्चादर्श के बल पर ही श्रागे नहीं बढ सकतीं, यद्यपि वह उनकी सफलता के लिए श्रत्यंत श्रावश्यक है। ती भी कवीनद्र जो भी साधन जुटा पाते थे. जो भी धन भारत या बाहर से एकत्रित कर पाते थे. उनसे वह नवीन भारत के सर्वांगीन निर्माण की योजना तैयार करने की कोशिश करते थे। शांतिनिकेतन में भारतीय-विद्या, भारतीय संस्कृति श्रीर भारतीय तत्वज्ञान के श्रध्ययन को भी वह भूले नहीं । बृहत्तर भारत पर तो शांतिनिकेतन में जितनी श्रच्छी श्रीर प्रचुर परिमाण में पुस्तकें हैं, वैसी भारत में श्रन्यत्र कम मिलेंगी। लेकिन रवीन्द्र यह भी जानते थे कि केवल साहित्य, संगीत श्रीर कला से भूखे-नंगे भारत को भोजन वस्त्र नहीं दिया जा सकता। उन्होंने कृषि श्रीर उद्योग-धंधे के विकास की शिक्षा के लिए श्रीनिकेतन स्थापित किया। यह सब काम रवीन्द्र ने तब शारभ किया, जबकि भारत के कितने ही बुद्धि-विद्या के ठेकेदार मजे से श्रंग्रेजों के कृपापात्र रहते, जीवन का श्रानन्द लेते ऐसी कल्पनाश्चों को व्यर्थ का स्वप्न समस्रते थे। श्रारचर्य तो यह है कि श्राज हमारे कितने ही राष्ट्रीय नेता श्रंप्रोजों के इन पिट्डुग्रों का स्मारक स्थापित करके कृतज्ञता प्रकट करना चाहते हैं। उसी प्रयाग में चंद्रोखर श्राजाद के नहीं, सपू के स्मारक की श्रपील निकाली जा रही है।

रवीन्द्र हमारे देश के महान् किव ही नहीं थे, बिल्क उन्होंने युग, प्रवर्तन में कियात्मक भाग लिया। रवीन्द्र की प्रतिमा इतने न्यापक चित्र में कभी सचेष्ट न होती, यदि उन्होंने ग्रांशिक रूप में घुमक्कड़ी पथ स्वीकार न किया होता। उनकी कृतियों में देश-दर्शन ने कितनी सहायता की, इसे ग्रांकना मुश्किल है, किन्तु रवीन्द्र ने विशाल विश्व को श्रात्मीय के तौर पर देखा था। किसीको देखकर कहीं उन्हें चका-

चौंध नहीं श्रायी, न किसीको हीन देखकर श्रवहेलना का भाव श्राया। यहाँ श्रवस्य रवीन्द्र का विशाल श्रमण सहायक हुश्रा। रवीन्द्र की लेखनी में श्रमकक ही ने सहायता की, इसे हमें मानना पड़ेगा। श्रीर उसीने उन्हें श्रपनी महती संस्था को विश्वभारती बनाने की प्रेरणा दो।

सुन्दर काव्य, महाकाव्य की रचना में धुमक्कड़ी से बहुत प्रेरणा मिल सकती है। उसमें ऐसे पात्र श्रीर घटनाएं मिल सकती हैं, जिन पर हमारे घुमक्कड़ कवि महाकान्य रच सकते हैं। चौथी शताब्दी का श्रंत था, जबकि महाकवि कालिदास, चंद्रगुष्त विक्रमादित्य के शासन में अपनी प्रतिसा का चमत्कार दिखा रहे थे। उसी समय काश्मीर के एक विद्वान भिन्नु सुन्दरियों की खान तुषार (चीना तुर्किस्तान के उत्तरी भाग ) देश की नगरी कूचान ( कूचा ) में राजा-प्रजा से सम्मानित हो विहार कर रहे थे। कारमीर उस समय श्रीर भी श्रधिक सौंदर्य का धनी था, श्रौर कूचान में तो मानो मानवियां नहीं श्रप्सरायें रहा करती थीं —सभी महारवेताएं, सभी नीलाचियां, सभी पिंगल केशाएं श्रौर सभी श्रवने श्रानन से चन्द्र को लजाने वाली। काश्मीरी भिचु ने त्रेलोक्य-सुन्दरी राजकुमारी को श्रपना हृदय दे डाला। कृचान में मुक्त वातावरण था; लोग बुद्ध-धर्म में भी खपार श्रद्धा रखते, श्रीर जीवनरस के श्रास्वादन में भी पीछे नहीं रहना चाइते थे। दोनों के प्रेंग्य का परिगाम एक सुन्दर बालक हुन्ना, जिसे दुनिया कुमारजीव के नाम से जानती है। कुमारजीव ने पितृभूमि कारमीर में रहकर शास्त्रों का श्रध्ययन किया, फिर मातुल-राजधानी में श्रपने विद्या के प्रताप से सत्कृत श्रीर प्रजित हुए। उनकी कीर्त्ति चीन तक पहुँची। सम्राट के मांगने पर इन्कार करने के कारण चीनी सेना ने श्राक्रमण् किया, श्रौर श्रन्त में कुमारजीव की साथ ले गई। ४०१ ई० से ४१२ ई० के बारह सालों में चीन में रहकर कुमारजीव ने बहुत से संस्कृत प्रन्थों का चीनी भाषा में श्रुतवाद किया, जिनमें बहुत से संस्कृत में लुप्त हो आज भी चीनी में मौजूद हैं। कुमारजीव अपनी

साहित्यिक भाषा के लिए चीन के साहित्यकारों में सर्वप्रथम स्थान रखते हैं। कुमारजीव की जीवनी यहाँ लिखना अभिन्नेत नहीं है, बिल्क हमें यह दिखलाना है कि एक किव प्रतिभा कुमारजीव को लेकर सभी रसों से पूर्ण और भारत और बृहत्तर भारत की महिमा से ओत-प्रोत एक महाकाव्य लिख सकती है। महान् ब्रुमक्कइ गुर्णवर्मा (४३९ ई०) भी एक महाकाव्य के नायक हो सकते हैं। कम्बोज में जाकर भारतीय संस्कृति और वैदिक धर्म की ध्वजा फहराने वाले माथुर दिवाकर भट्ट का जीवन भी किसी किव को एक महाकाव्य लिखने की प्रेरणा दे सकता है। इसलिए यह अत्युक्ति नहीं होगी, यदि हम वहें कि ब्रुमक्कइ की चर्या सरस्वती के आवाहन में भारी सहायक हो सकती है।

हमारा घुमकक जावा के महाद्वीप में श्रव भी बच रही श्रपनी अनेकों सांस्कृतिक निधियों से प्रेरणा लेकर बरोबुदुर पर एक सुन्दर काव्य लिख सकता है, तथा "श्रज् न-विवाह", "कृष्णायन", "भारत युद्ध", "स्मरदहन" जैसे हिंदू जावा के सुन्दर काव्यों को काव्यमय श्रजुवाद में हमारे सामने रख सकता है। यदि कविता के लिए चित्र-विचित्र प्राकृतिक दश्य प्रेरक होते हैं, यदि कविता में उदात श्रद्धुत घटनाएं प्राण डालती हैं, यदि श्रपने चारों तरफ फेले विशाल कीर्तिशेष कि को उल्लिसित कर सकते हैं; तो हमारी यह श्राशा श्रसम्भव-कल्पना नहीं है कि हमारे तरुण श्रुमक्कड़ की काव्य-प्रतिभा श्रपनी सुमक्कड़ी के कितने ही दश्यों से प्रभावित हो वाल्मीकि के कंठ की तरह फूट निकलेगी।

लेखनी का कोमल पदावली से अन्यत्र भी भारी उपयोग हो सकता है। हमारे क्या दूसरे देशों के भी प्राचीन साहित्य में गद्य को वह महत्व-पूर्ण स्थान नहीं प्राप्त था, जो आज उसे प्राप्त हुआ है। उच्च श्रेणी के घुमक्कड़ के लिए लेखनी का धनी होना बहुत जरूरी है। बँधी हुई लेखनी को खोलने का काम यदि घुमक्कड़ी नहीं कर सकती, तो कोई हुसरा नहीं कर सकता। घुमक्कड़ देश-विदेश में घूमता हुआ चित्र-विचित्र

दृश्यों को देखता है. भिन्न-भिन्न रूप-रंग तथा श्राचार-विचार के लोगों के संपर्क में श्राता है । जिन दश्यों को देखकर उसके हृदय में कौतहल. श्राकर्षण श्रीर तिन पैदा होती है. उसके लिए स्वामाविक है कि उनके बारे में दूसरों से कहे । इसके लिए घुमक्कड़ का हाथ स्वतः लेखनी की उठा लेता है. लेखनी मानो स्वयं चलने लगती है। उसे मानसिक कल्पना द्वारा नई सृष्टि की भ्रावश्यकता नहीं। दश्यों, व्यक्तियों श्रीर घटनाओं को जैसे ही देखता है, बैसे ही वह हृदयस्थ होने लगती हैं. श्रीर फिर लेखनी श्रपने श्राप उन्हें वर्णों में श्रंकित करने लगती है। घुमक्कड को अपनी यात्रा किस रूप में लिखनी चाहिए, इसके लिए नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। उसे वास्तविकता को सामने रखते हुए जिस शैली में इच्छा हो, लिपिबद्ध कर देना चाहिए। श्रारम्भ में श्रभी-श्रभी लिखने का प्रयास करने वाले के लिए यह भी श्रच्छा होगा, यदि वह अपने किसी देश-बन्धु को पत्ररूप में श्राँखों के सामने श्राते दृश्यों को श्रंकित करे। लेखक की प्रतिभा के उद्जाग एए के लिए पत्र श्रारम्भ में बढ़े सहायक होते हैं। कितने ही भावी लेखकों को उनके पत्रीं द्वारा पकड़ा जा सकता है। पत्र दो स्यक्तियों के श्रापसी साचात संबन्ध की पुष्टभूमि में एक दूसरे के लिए श्राकर्षक या श्रावश्यक बातों को लेकर लिखे जाते हैं। यदि लेखक में प्रतिभा है, तो उसका चमत्कार लेखनी से जरूर उतरेगा। लेकिन, यह कोई आवश्यक नहीं है, कि यात्रा-संबधी लेख पत्रों के रूप में ही श्रारम्म किये जायं। धमकद श्रारम्भ से ही यात्रा विवरण के रूप में लेखनी चला सकता है। लिखने के ढंग के बारे में चिंता करने की श्रावश्यकता नहीं। श्रद्धे लेखक भी श्रपने पहले के लेखकों से प्रभावित जरूर होते हैं, किन्त बिना ही उनकी प्रयास श्रपनी निजी शेली भी बन जाती है।

यात्रावर्णन स्वयं एक उच्च साहित्य का रूप तो सकता है, यह कितने ही लेखकों के वर्णन से समम्म में श्रा सकता है। जो सतत धुम- कुक है, श्रोर नये नये देशों में घूमता रहता है, उसके लिए तो यात्राएं

ही इतनी सामग्री दे सकती हैं, जिस पर लिखने के लिए सारा जीवन पर्याप्त नहीं हो सकता । लेकिन यात्राग्रों के लेखक दूसरी वस्तुग्रों के लिखने में भी कृतकार्य हो सकते हैं। यात्रा में तो कहानियाँ बीच में ऐसे ही श्राती रहती हैं, जिनके स्वामाविक वर्णन से धुमनकड़ कहानी लिखने की कला श्रोर शैली को हस्तगत कर सकता है। यात्रा में चाहे प्रथम पुरुष में लिखें या श्रम्य पुरुष में, घुमनकड़ तो उसमें शामिल ही है, इसिलए धुमनकड़ उपन्यास की श्रोर भी बढ़ने की श्रपनी चमता को पहचान सकता है, श्रोर पहले के लेखन का श्रम्यास इसमें सहायक हो सकता है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों के साथ-साथ भौगोलिक एष्टभूमि का ज्ञान श्रत्यावस्यक है। घुमक्कड का ग्रपना विषय होने से वह कभी भौगोलिक अनौचित्य को अपनी कृतियों में श्राने नहीं देगा । फिर बृहत्तर भारत के भारत-संबंधी उपन्यास लिखने में तो घुमक्कड़ को छोड़कर किसीकों अधिकार नहीं है। कुमारजीव,गुरावमी, दिवाकर, शांतिरचित. दीपंकर श्रीज्ञान, शाक्य श्रीभद्द की जीवनियों के चारों तरफ हम उस समय के बृहत्तर भारत का सजीव चित्र उतार सकते हैं। हाँ, इसके लिए घुमक्कड़ को जहाँ तहाँ उहर कर सामग्री जमा करनी पड़ेगी। चुंकि हमारे पुराने घुमक्कड़ दूर-दूर देशों में चक्कर काटते रहे, इसलिए युमक्कड़ को सामग्री एकत्रित करने के लिए टर-दर तक घूमना पड़ेगा। इतिहास का ज्ञान हरेक सभ्य जाति के लिए अत्यावश्यक है। लेकिन जो इतिहास केवल राजा-रानियों तक ही अपने को सीमित रखता है, वह एकांगी होता है: उससे हमें उस समय के सारे समाज का परिचय नहीं मिलता । ऐतिहासिक उपन्यास सर्वी गीन इतिहास को सजीव बनाकर रखते हैं। जो ऐतिहासिक उपन्यासकार श्रपने उत्तरदायित्व को समऋता है, वह कभी ऐतिहासिक या भौगोलिक श्रनौचित्य श्रपनी कृति में नहीं श्राने देगा। हमारे समक्कड़ के लिए यहाँ कितना बड़ा चेत्र है, इसे कहने की ग्रावश्यकता नहीं है।

धुमक्कड़ को अपनी लेखनी चलाते समय बड़े संयम रखने की श्रावश्यकता है। रोचक बनाने के लिए कितनी ही बार बाबा-लेखक श्रतिरंजन श्रीर श्रतिशयोक्ति से ही काम नहीं लेते. बल्कि कितनी ही श्रसंभव श्रौर श्रसंगत बातें रहस्यवाद के नाम से क्षिख डावते हैं। उच्च दुमक्दड़ों के दुनिया में श्राने के पहले जो भूगोलज्ञान लोगों के पास था, वह मिथ्याविश्वासों से भरा था। लोग समस्ते थे, किसी जगह एक टंगा लोगों का देश है, वहां सभी लोग एक टांग के होते हैं। कहीं बड़े कान वालों का देश माना जाता था, िन्हें श्रोदना-विछौना की श्रावश्यकता नहीं, वह एक कान को बिछा लेते श्रीर दूसरे की श्रोढ़ खेते हैं। इसी तरह नाना प्रकार की मिथ्या कथाएं प्राग-घुमनकड़ कालीन दुनिया में प्रसिद्ध थीं। घुमक्कड़ों ने सूर्य की मांति उदय होकर इस सारे विमिर-वोम को छिन्न-भिन्न किया। यदि ग्राज धुमक्कड़-श्रपनी दायित्वदीनता का परिचय देते नाना बहानों से मिथ्या विश्वासों को प्रोत्साहन देते हैं, तो वह श्रपने कुलधर्म के विरुद्ध जाते हैं। कावागुची ने श्रपने "तिब्बत में तीन वर्ष" ग्रन्थ में कई जगह श्रतिरंजन से काम लिया है। मैं समकता हैं. यदि उनकी पुस्तक किसी श्रंघेत या श्रमेरिकन प्रकाशक के लिए लिखी गई होती. तो उसमें और भी ऐसी बातें भरी जातीं। त्राज प्रेस और प्रकाशन करोइपतियों के हाथ में चले गए हैं। इङ्गलैयड श्रौर श्रभेरिका में तो उन्हींका राज्य है। भारत में भी श्रव वहीं होता जा रहा है। यह करोड़पति प्रकाशक लोगों को प्रकाश में नहीं लाना चाहते; वह चाहते हैं कि वह श्रीर श्रंधेरे में रहें, इसीदिए वह लोगों को हर तरह से बेबकूफ रखने की कोशिश करते हैं। मुक्ते श्रपना तजर्बा याद श्राता है: लंदन के बहुमचितत "डेलीमेल" (पत्र) के संवादाता ने मेरी तिब्बत-यात्रा के बारे में लिखते हुए बिलकुल अपने मन से यह भी लिख डाला—"यह तिब्बत के बीहड़ जंगलों में यूम रहे थे, इसी वक्त डाऊप्रों ने भाकर घेर लिया, वह तलवार चलाना ही चाहते थे कि भीतर से एक बाघ दहाढ़ते हुए निकला, डाकू प्राण लेकर भाग

गये।" पत्र के श्राफिस से जब यह बात मेरे पास भेजी गई, तो मैंने मूटी श्रसंभव बातों को काट दिया श्रीर बतलाया कि तिब्बत में न वैसा जंगल है. श्रीर न वहां बाघ ही होते हैं। लेकिन श्रगले दिन देखा. दूसरी पंक्तियों में कुछ कम भले ही हो गई थीं, किंतु काटी हुई पंक्तियां वहां मौजूद थीं। "डेलीमेल" वाले एक ही देले से दो चिड़ियाँ मार रहे थे। मुक्ते वह ढोंगी श्रीर फुठा साबित करना चाहते थे श्रीर श्रपने १४-१४ लाख प्राहकों में से काफी की ऐसे चमत्कार की बात सनाकर हर तरह के मिथ्या विश्वासों पर इट करना चाहते थे। जनता जितना श्रंधविश्वास की शिकार रहे. उतना ही तो इन जोंकों को लाभ है। इससे यह भी माल्म हो गया कि इस तरह के चमत्कारों को भी प्रन्थ में भरने का प्रोत्साहन प्रकाशकों की खोर से दिया जाता है। उसी समय हमारे देश के एक स्वामी लंदन में विराज रहे थे। उन्होंने कुछ अपने श्रीर कुछ श्रपने गुरू के सबंध से हिमालय. मानसरीवर श्रीर कैलाश के नाम से ऐसी-ऐसी बातें जिखी थीं. जिनको यदि सच मान जिया जाय, तो दुनिया की कोई चीज असंभव नहीं रहेगी। बुमक्कड़ों को श्रपनी जिम्मेवारी समस्तनी चाहिए श्रीर कभी सुठी बातों श्रीर मिथ्या विश्वास को अपनी लेखनी से प्रोत्साहन देकर पाठकों को अंधकृप में नहीं गिराना चाहिए।

लेखनी का घुमक्दड़ी से कितना संबंध है, कितनी सहायता वहां से लेखनी को मिल सकती है, इसका दिग्दर्शन हमने उपर करा दिया। लेखनी की भांति ही त्लिका थ्रोर छिन्नी भी घुमक्कड़ी के सम्पर्क से चमक उठती हैं। त्लिका को घुमक्कड़ी कितना चमका सकती हैं, इसका एक उदाहरण रूसी चित्रकार निकोलस रोयरिक थे। हिमालय हमारा है, यह कहकर भारतीय गर्व करते हैं, लेकिन इस देवात्मा नगाधिराज के रूप को श्रांकित करने में रोयरिक की त्लिका ने जितनी सफलता पाई, उसका शतांश भी किसीने नहीं कर दिखाया। रोयरिक की त्लिका रूस में बैठे इस चमकार को नहीं दिखला सकती थी।

यह वर्षों की घुमक्कड़-चर्या थी, जिसने रोयरिक को इस तरह सफल बनाया। रूस के एक दूसरे चित्रकार ने पिछ्न शिताब्दी में "जनता में ईसा" नामक एक चित्र बनाने में २४ साल लगा दिए। वह चित्र श्रद्भुत है। साधारण बुद्धि का श्रादमी भी उसके सामने खड़ा होने पर श्रद्भुत करने लगता है, कि वह किसी श्रद्धितीय कृति के सामने खड़ा है। इस चित्र के बनाने के लिए चित्रकार ने कई साल ईसा की जन्मभूमि फिलस्तीन में बिताये। वहां के दश्यों तथा व्यक्तियों के नाना प्रकार के रेखाचित्र श्रीर वर्णोचित्र बनाये, श्रन्त में उन सबको मिलाकर इस महान् चित्र का उसने निर्माण किया। यह भी त्लिका श्रीर घुमक्कड़ी के सुन्दर सम्बन्ध को बतलाता है।

छिन्नी क्या, वास्तुकला के सभी श्रंगों में घुमक्कड़ी का प्रभाव देखा जाता है। कलाकार की छिन्नी एक देश से दूसरे देश में, यहां तक कि एक द्वीप से दूसरे द्वीप में छलांग मारती रही है। हमारे देश की गंधार-कला क्या है? ऐसी ही घुमक्कड़ी श्रौर छिन्नी के सुन्दर संबन्ध का परिणाम है। जावा के बरोबुदुर, कंबोज के श्रङ्कोरवात श्रौर तुङ्-ह्वान की सहस्व-बुद्ध गुफाश्रों का निर्माण करने वाली छिन्नियां उसी स्थान में नहीं बनीं, विलंक दूर-दूर से चलकर वहाँ पहुंची थीं, जहाँ घुमक्कड़ी के प्रभाव ने मुलस्थान की कला का निर्जीव नमूना न रख उसे श्रौर चमका दिया। श्राज भी हमारा घुमक्कड़ श्रपनी छिन्नी लेकर विश्व में कहीं भी निराबाध घूम सकता है।

धुमक्कड़ी लेखक श्रोर कलाकार के लिए धर्म-विजय का प्रयास है, वह कला-विजय का प्रयास है, श्रोर साहित्य-विजय का भी। वस्तुतः धुमक्कड़ी को साधारस बात नहीं समस्ती चाहिए, यह सत्य की खोज के लिए, कला के निर्मास के लिए, सद्भावनाश्रों के प्रसार के लिए महानू दिग्विजय है!

निरुद्देश्य का अर्थ है उद्देश्यरहित. अर्थात बिना प्रयोजन का। अयोजन बिना तो कोई मन्दबुद्धि भी काम नहीं करता। इसलिए कोई समसदार धमकड़ यदि निरुद्देश्य ही बीहड़पथ को पकड़े तो यह विचित्र-सीबात है। निरुद्देश्य बंगला में "घर से गुम हो जाने" को कहते हैं। यह बात कितने ही घुमकड़ों पर लागु हो सकती है. जिन्होंने कि एक बार घर छोड़ने के बाद फिर उधर मंह नहीं किया। लेकिन अमकड़ों के लिए जो साधन और कर्त्तव्य इस शास्त्र में लिखे गए हैं. उन्हें देखकर कितने ही घुमक्कड़ कह उठेंगे-हमें उनकी भावश्यकता नहीं, क्योंकि हमारी यात्रा का कोई महान् या लघु उद्देश्य नहीं। बहुत पूछने पर वह तुलसीदास की पांती "स्वान्तः सुखाय" कह देंगे। लेकिन 'स्वान्तः सखाय' कहकर भी तुलसीदास ने जो महती कृति संसार के लिए छोड़ी क्या वह निरुद्देश्यता की द्योतक है ? खेर 'स्वान्त: सुखाय' कह लीजिए, श्राप जो करेंगे वह बुरा काम तो नहीं होगा ? श्राप बहुजन के श्रकत्याण का तो कोई काम नहीं करेंगे ? ऐसा कोई संभ्रांत घुमक्कड़ नहीं होगा, जो कि दूसरों को दुःख श्रौर पीड़ा देने वाला काम करेगा। हो सकता है, कोई त्रालस्य के कारण लेखनी, तुलिका या छिन्नी नहीं छना चाहता, लेकिन इस तरह के स्थायी आत्मश्रकाश के बिना भी श्रादमी श्रात्म-प्रकाश कर सकता है। हर एक श्रादमी अपने साथ एक वातावरण लेकर घूमता है, जिसके पास श्राने वाले श्रवस्य उससे प्रभावित होते हैं।

धमक्कड यदि मौन रहने का वत धारण कर ले. तो वह अधिक सफलता से श्रात्म-गोपन कर सकता है: किन्तु ऐसा घुमक्कड़ देश की सीमा से बाहर जाने की हिम्मत नहीं कर सकता। फिर ऐसा क्या संकट पड़ा है कि सारे भवन में विचरण करने वाला व्यक्ति श्रपनी जीभ कटा ले । केवल बोलने वाला घुमन्कड् दूसरे का कम लाभ नहीं करता। बोजने और जिखने दोनों ही से काल और देश दोनों में अधिक आदमी लाभ उठा सकते हैं. लेकिन श्रकेली वाणी भी कम महत्व नहीं रखती। इस शताब्दी के आरम्भ में काशी के सर्वश्रेष्ठ विद्वान पंडित शिवकुमार शासी अपने समय के ही नहीं. वर्त्त मान अर्ध-शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ संस्क-तज्ञ थे। वह शास्त्रार्थ में अद्वितीय तथा सफल अध्यापक थे. किन्त लेखनी के या तो आलसी थे या दुर्बल; अथवा दोनों ही। उन्होंने एक पुस्तक पहले लिखी, जब कि उनकी ख्याति नहीं हुई थी। ख्याति के बाट एक प्रस्तक लिखी. किन्तु उसे अपने शिष्य के नाम से छुपवाया। प्रतिद्वन्द्वी दोष निकालेंगे. इसीलिए वह कुछ भी लिखने से हिचकिचाते थे। उस समय केदोष निकालने वाले संस्कृतज्ञ कुछ निम्नतल में चले गए थे. इसमें संदेह नहीं । म होजी दीचित ने शहजहां के समय सत्रहवीं सदी के पूर्वार्घ में 'सिद्धान्त कौमदी' नाम की प्रसिद्ध पुस्तक जिल्ली, साथ ही व्याकरण के कितने ही तत्वों की व्याख्या करते हए 'मनोरमा' नामक प्रन्थ भी लिखा । शाहजहां के दरबारी पंडित, पंडितराज जगननाथ विचारों में कितने उदार थे, यह इसीसे मालूम होगा कि उन्होंने स्व-धर्म पर श्रारूद रहते एक मुसलमान स्त्री से ब्याह किया । उनकी सारे शास्त्रों में गति थी श्रीर वह वस्तुतः पंडितराज ही नहीं बहिक संस्कृत के श्रन्तिम महान् कवि थे। लेकिन भट्टोजी दीचित की भूल दिखलाने के लिए उन्होंने बहुत निम्नतल पर उत्तरकर मनोरमा के विरुद्ध 'मनोरमा-कुचमर्दन' लिखा। बेचारे शिवकुमार "दूध का जला छाछ फू क-फू क कर पिये" की कहावत के मारे यदि लेखनी नहीं चला सके, तो उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता । खेकिन दो पीढियों तक पढाते संस्कृत के सैकड़ों चोटी के विद्वानों को पड़ाकर क्या उन्होंने अपनी विद्वत्ता से कम लाभ पहुंचाया ? कीन कह सकता है, वह ऋषि-ऋण मे उऋण हुए बिना चले गए। इसलिए यह समम्मना गलत है कि घुमक्कड़ यदि अपनी यात्रा निरुद्देश्य करता है, तो वह टोस पदार्थ के रूप में अपनी कृति नहीं छोड़ जायगा।

भूतकाल में हमारे बहुत-से ऐसे घुमक इड़ हुए, जिन्होंने कोई लेख या पुस्तक नहीं छोड़ी। बहुत भारी संख्या को संसार जान भी नहीं सका । एक रूसी महान चित्रकार ने तीन सवारों का चित्र उतारा है । किसी दुर्गम निर्जन देश में चार तरुण सवार जा रहे थे, जिनमें से एक यात्री की बिज हो गया। बाको तीन सबार बहुत दिनों बाद बुढ़ापे के समीप पहुँचकर लौट रहे थे। रास्ते में अपने प्रथम साथी और उसके घोड़े की सफेद खोपड़ियां दिखाई पड़ीं। तीनों सवारों और घोड़े के चेहरे में करुणा की श्रतिवृष्टि कराने में चित्रकार ने कमाल कर दिया है। इस चित्र को उस समय तक मैंने नहीं देखा था, जबकि १६३० में सम्-ये के विहार में अपने से बारह शताब्दी पहले हिमालय के दुर्गम मार्ग को पार करके तिब्बत गये नालन्दा के महानु श्राचार्य शान्तरहित की खोपडी देखी तो मेरे हृदय की श्रवस्था बहुत ही करुण हो उठी थी। कुछ मिनटों तक मैं उस खोपड़ी को एकटक देखता रहा, जिसमें से 'तत्व-संग्रह' जैसा महान् दार्शनिक ग्रन्थ निकला ग्रौर जिसमें पचहत्तर वर्ष की उमर में भी हिमा-लय पार करके तिटबत जाने की हिस्सत थी । परन्त शांतरचित गुम-नाम नहीं मरे। उन्होंने स्वयं अपनी यात्रा नहीं लिखो, लेकिन दूसरों ने महान श्राचार्य बोधिसत्व के बारे में काफी लिखा है।

ऐसी भी खोपिड़ियों का निराकार रूप में साचात्कार हुन्ना है, जो हुनिया बूमते-बूमते गुमनाम ही चली गईं। निजनीनवोमाद में गये उस भारतीय घुमझड़ के बारे में किसीको पता नहीं कि वह कौन था, किस शताब्दी में गया था, न यही मालूम कि वह कहां पैदा हुन्ना था, श्रीर कैसे-कैसे चक्कर काटता रहा। यह सारी बातं उसाके साथ चली गईं। वन मान शताब्दी के शारम्भ में एक रूसी उपन्यासकार को निजनी-नवोग्राट की भौगोलिक ग्रीर सामाजिक एष्ट्रभमि को लिये एक उपन्यास लिखने की इच्छा हुई। उसीने वहां एक गुप्त सम्प्रदाय का पता लगाया. जो बाहर से श्रपने को ईसाई कहता था, लेकिन लोग उस पर विश्वास नहीं करते थे। उपन्यासकार ने उनके भीतर घुसकर पूजा के समय गाये जाने वाले कुछ गीत जमा किये। वह गीत यद्यपि कई पीढियों से भाषा से अपरिचित लोगों द्वारा गाये जाते थे. इसलिए भाषा बहत विकृत हो चुकी थी. तो भी इसमें कोई संदेह की गुंजाइश नहीं. कि वह हिंदी भाषा के गीत थे और उनमें गौरी तथा महादेव की महिमा गाई गई थी। उपन्यासकार ने लिखा है कि उसके समय ( बीसवीं शताब्दी के ग्रारम्भ में ) इस पन्थ की संख्या कई हजार थी. उसका मुखिया ज़ार की संना का एक कर्नेल था। मालुम नहीं क्रांति की आँधी में वह पन्थ कुछ बचा या नहीं, किन्तु ख्याल कीजिए-कहाँ भारत श्रीर कहां मध्य वोल्गा में आधुनिक गोरकी और उस समय का निजनीनवो-माद । निजनीनवोग्राद ( निचला नया नगर ) में दुनिया का सबसे बड़ा मेला लगता था. जिसमें युरोप हो नहीं, चीन, भारत तक के ज्यापारी पहुंचते थे। जान पड़ता है, मेले के समय वह फक्कड़ भारतीय वहां पहुंच गया। फक्कड़ बाबा के लिए क्या बात थी ? यदि वह कहीं दो-चार साल के लिए रम जाता तो वहां उसकी समाधि होती। फिर तो उपन्यासकार श्रवश्य उसका वर्णन करता । खैर, भारतीय धुमक्कड ने रूसी परिवारों में से क़छ को अपना ज्ञान-ध्यान दिया । भाषा का इतना परिचय हो कि वह वेदांत ।सखलाने की कोशिश करे, यह सम्भव नहीं माल्म होता। वेदांत सिखलाने वाले को हर-गौरी के गीतों पर श्राधिक जोर देने की श्रावश्यकता नहीं होती। फक्कड़ डाबा के पास कोई चीज़ थी, जिसने वोल्गा तट के ईसाई रूसियों को अपनी श्रोर आकृष्ट किया. नहीं तो वह इकट्रा होकर पूजा करते हर-गौरी का गीत क्यों गाते ? संभव है फक्कड बाबा को योग श्रीर त्राटक के लटके माल्म हों। ये श्रमोघ श्रस्त्र हैं, जिन्हें ले कर हमारे श्राज के कितने ही सिद्ध पुरुष यूरोपियन शिचितों को दंग करते हैं। फिर सत्रहवीं-श्रठारहवीं शताबदी में यदि फक्कड़ बाबा ने लोगों को मुग्ध किया हो, श्रथवा श्रात्मिक शान्ति दो हो, तो क्या श्रारचर्य ? वोलगा तक फक्कड़ बाबा भी निरुद्देश्य गया, लेकिन निरुद्देश्य रहते भी वह कितना काम कर गया ? पश्चिमी यूरोप के लोग उन्नीसवीं-बोसवीं सदी में जिस तरह भारतीयों को नीची निगाह से देखते थे, रूसियों का भाव वैसा नहीं था। क्या जाने उसका कितना श्रेय फक्कड़ बाबा जैसे घुमक्कड़ों को है ? इसलिए निरुद्देश्य घुमक्कड़ से हमें हताश होने की श्रावश्यकता नहीं है।

तीस बरस से भारत से गये हुए एक मित्र जब पहली बार मुक्ते रूस में मिले, तो गद्गद होकर कहने लगे-"श्रापके शरीर से मातृ-भिम की सुगंध आ रही है।" हरएक घुमक्कड़ अपने देश की गंध ले जाता है। यदि वह उच्च श्रेशी का घुमक्कड़ नहीं हो तो वह दुर्गंध होती है: किंतु हम निरुद्देश्य बुमक्कड़ से दुर्गन्ध पहुंचाने की श्राशा नहीं रखते। वह अपने देश के लिए श्रमिमान करेगा। भारत जैसी मातुभूमि पाकर कौन श्रमिमान नहीं करेगा ? यहां हजारों चीज़ें हैं, जिन पर अभिमान होना ही चाहिए। गर्व में आकर दूसरे देश को हीन समक्तने की प्रवृत्ति हमारे घुमक्कड़ की कभी नहीं होगी, यह हमारी श्राशा है श्रीर यही हमारी प्राचीन परम्परा भी है। हमारे घुमक्कड़ श्रसस्कृत देश में संस्कृति का संदेश लेकर गये. किंतु इसलिए नहीं कि जाकर उस देश को प्रताहित करें। वह उसे भी अपने जैसा संस्कृत बनाने के लिए गये। कोई देश अपने को हीन न समसे, इसीका ध्यान रखते उन्होंने श्रपने ज्ञान-विज्ञान को उसकी भाषा की पोशाक पहनाई. श्रपनी कला को उसके वातावरण का रूप दिया। मातृभूमि का श्रमिमान पाप नहीं है, यदि वह दुरिममान नहीं हो । हमारा घसक्कड निरुद्देश्य होने पर भी अपने को अपने देश का प्रतिनिधि सममेगा, श्रीर इस बात की कोशिश करेगा कि उससे कोई ऐसी बात न हो, जिससे उसकी जन्मभूमि श्रोर घुमक्कड़-पंथ लांछित हों। वह समस्ता है, इस निरुद्देश्य घुमक्कड़ी में मातृभूमि की दी हुई हिड्डियां न जाने किस पराये देश में बिखर जायं, देश की इस थाती को पराये देश में डालना पड़े, इस ऋण का ख्याल करके भी घुमक्कड़ सदा श्रपनी मातृभूमि के प्रति कृतज्ञ वनने की कोशिश करेगा।

बिना किसी उद्देश्य के पृथ्वी-पर्यटन करना यह भी छोटा उद्देश्य नहीं है। यदि किसीने बीस-बाईस साल की श्रायु में भारत छोड़ दिया श्रीर छुश्रों महाद्वीपों के एक-एक देश में वूमने का ही संकल्प कर लिया, तो यह भी श्रप्रत्यन्न रूप से कम लाभ की चीज नहीं है। ऐसे भी भार-तीय घुमक्कड़ पहले हुए हैं, ऋौर एक तो श्रव भी जीवित है। उसकी कितनी ही बातें मैंने यूरोप में दूसरे लोगों के मुंह से सुनीं। कई बातें तो विश्वसनीय नहीं हैं। सोलह-ऋठारह बरस की उमर में कलकत्ता विश्व-विद्यालय से दर्शन का डाक्टर होना- सो भी प्रथम विश्वयुद्ध के पहले. यह विश्वास की बात नहीं है। खेर, उसके दोषों से कोई मतलब नहीं। उसने घुमक्कड़ी बहुत की है। शायद पैंतीस-छत्तीस बरस उसे वृमते ही हो गए, और अमेरिका, युरोप, तथा भ्रटलांटिक और प्रशांत महा-सागर के द्वीपों को उसने कितनी बार छान डाला, इसे कहना सुश्किल है। श्रंप्रोजी, फ्रांसीसी, स्पेनिश श्रादि भाषायें उसने घूमते-वूमते सीखीं। वह इसी तरह वृमते-वृमते एक दिन कहीं चिरनिदा-विजीन हो जायगा श्रीर न श्रपनों न परायों को याद रहेगा, कि लास्सेकंक्रकरिया नाम का एक श्रनथक निर्भय धुमक्कड़ भी भारत में पैदा हुआ था। तो भी वह शिचित श्रीर संस्कृत धुमक्कड़ है, इसलिए उसने श्रपनी धुमक्कड़ी में बाजील, क्यूबा, फ्रांस श्रीर जर्मनी के कितने लोगों पर प्रभाव ढाला होगा, इसे कौन बतला सकता है ? श्रीर इसी तरह का एक घुमक्कड़ १६३२ में मुक्ते लंदन में मिला था। वह हमीरपुर जिले का रहनेवाला था। नाम उसका शरीफ था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय वह किसी तरह इंग्लैंगड पहुँचा। उसके जीवन के बारे में मालूम न हो सका, किन्तु

जब मिला था तब से बहुत ९ हत्ते ही मे वह एकान्त घुमक्कड़ी कर रहा था, श्रीर सो भी इ'ग्लैंगड जैसे भौतिकवादी देश में। इ'ग्लैंड, स्काटलैंड श्रीर श्रायरलैंड में साल में एक बार जरूर वह पैदल घूम श्राता था। घूमते रहना उसका वत था।कमाने का बहुत दिनों से उसने नाम नहीं लिया। भोजन का सहारा भिचाथी। मैंने पूजा-भिचा मिलने में कठिनाई नहीं होती ? यहाँ तो भीख मांगने के खिखाफ कानून है। शरीफ ने कहा—हम बढ़े घरों में मांगने नहीं जाते, वह कुत्ता छोड़ देते हैं या टेलिफोन करके पुलिस को बुला लेते हैं। हमें वह गलियां श्रौर सड़कें मालूम हैं, जहाँ गरीब श्रौर साधारण श्रादमी रहते हैं। घरों के लेटर-बक्स पर पहले के घुमक्कड़ चिन्ह कर देते हैं, जिससे हमें मालूम हो जाता है कि यहाँ दर नहीं है श्रीर कुछ मिलने की श्राशा है। शरीफ रंग-ढंग से श्रात्म सम्मानहीन भिखारी नहीं मालूम होता था। कहता था - हम जाकर किवाड़ पर दस्तक लगाते या घंटी दबाते हैं। किसीके श्राने पर कह देते हैं - क्या एक प्याला चाय दे सकती हैं ? श्रावश्यकता हुई तो कह दिया, नहीं तो चाय के साथ रोटी का टुकड़ा भी त्रा जाता है। शहरों में भी यद्यपि शरीफ को घुमक्कड़ी ले जाती थी, किन्तु वह लंदन जैसे महानगरों से दूर रहना श्रधिक पसन्द करता था। सोने के बारे में कह रहा था—रात को सार्वजनिक उद्यानों के फाटक बंद हो जाते हैं, इसलिए इम दिन ही में वहाँ घास पर पड़कर सो लेते हैं। शरीफ ने यह भी कहा-चलें तो इस समय मैं रीजेंट पार्क में पचासों घुमक्कड़ों को सोया दिखला सकता हूँ। रात को घुम-क्कइ शहर की सड़कों पर घूमने में बिता देते हैं। वहीं एक अंग्रेज घुमक्कड़ से भी परिचय हुआ। कई सालों तक वह घुमक्कड़ी के पथ पर बहुत कुछ शरीफ के ढंग पर रहा, पर इधर पढ़ने का चस्का लग गया। लंदन में पुस्तकें सुलभ थीं श्रौर एक चिरकुमारी ने श्रपना सह-वास दे दिया था, इस प्रकार कुछ समय के लिए उसने घुमक्कड़ी से खुटी ले लो थी।

ऐसे लोग भी निरुद्देश्य घुमक्कड़ कहे जा सकते हैं। पर उन्हें ऊंचे दर्जे का घुमक्कड़ नहीं मान सकते; इसिलए नहीं कि वह बुरे श्रादमी हैं। बुरा श्रादमी निश्चिततापूर्वक दस-पंद्रह साल घुमक्कड़ी कैसे कर सकता है ? उसे तो जेल की हवा खानी पढ़ेगी। बड़े घुमक्कड़ इसिलए नहीं थे, कि उन्होंने श्रपने घूमने का स्थान दो टाएश्रों में सीमित रखा था। छुश्रों द्वीप—एसिया, यूरोप, श्रिका, उत्तरी श्रमेरिका, दिच्ची श्रमेरिका श्रीर श्रास्ट्रे लिया—जिसकी जागीर हों, वह बड़ा घुमक्कड़ कहा जा सकता है। एसियाइयों के लिए छुश्रों द्वीपों में कितने हा स्थान बंद हैं, इसिलए वह वहीं नहीं पहुँच सकते, तो इससे घुमक्कड़ का बड़प्पन कम नहीं होता।

निरुद्देश्य घुमक्कड़ कोई उद्देश्य न रखकर भी एक काम तो कर सकता है : वह घुमक्कड्-पन्थ के प्रति लोगों में सम्मान श्रौर विश्वास पैदा कर सकता है, सारे धुमक्कड़ों में घनिष्ठ आतृभाव पैदा कर सकता है। यह काम वह अपने श्राचरण से कर सकता है। श्राज दुनिया में संगठन का जमाना है। "संघे शक्तिः कलौ युगे", इसलिए यदि धुमक्कड़ संगठन की आवश्यकता महसूस करने लगे, तो कोई श्रारचर्यं नहीं। किन्तु किसी बाकायदा घुमक्कइ-संगठन की श्रावरय-कता नहीं है। हर एक घुमक्कड़ के भीतर आतृभावना छिपी हुई है, यदि वह थोड़ा एक दूसरे के संपर्क में श्रीर श्रायें-जायं, तो यही संगठन का काम करेगा। स्वस्थ धुमक्कड के हाथ-पेर चल रहे हैं, उस वक्त उसको चिन्ता नहीं हो सकती। बीमार हो जाने पर श्रवश्य बिना हित-मित्र, बिना गांव-देश के उसे आश्रयहीन होना पड़ता है। यद्यि उसकी चिन्ता से कभी घुमक्कड्-पन्थ में त्राने वालों की कमी नहीं हुई, तो भी ऐसे समय घुमकड़ की घुमकड़ के प्रति सहानुभूति श्रौर सहायता होनी चाहिए। ऐसे समय के लिए अपने भक्त श्रौर श्रनुयायियों में उन्हें ऐसी भावना पैदा करनी चाहिए, कि किसी भी घुमक्कड़ को सहायता के समय सहायता मिल जाव। घुमक्कड़ मठ श्रीर श्राश्रम वनाकर कहीं एक जगह बस जायगा, यह दुराशा मात्र है; किन्तु घुमनकड़ी-पन्थ से संबंध रखने वाले जितने मठ हैं, उनमें ऐसी भावना भरी जाय, जिसमें घुमनकड़ को श्रावश्यकता पड़ने पर विश्राम, स्थान मिल सके।

श्राने वाले घुमक्कड़ों के रास्ते को साफ रखना यह भी हरएक घुम-क्कड़ का कर्तव्य है। यदि इतने का भी ध्यान निरुद्देश्य धुमक्कड़ रखें, तो मैं समकता हूं, वह अपने समाज का सहायक हो सकता है। हजारों निरुद्देश्य धुमक्कड़ घर छोड़कर निकल जाते हैं। यदि आँखों के सामने किसी माँ का पूत मर जाता है, तो वह किसी तरह रो-धो कर सन्तोष कर लेती है; किन्तु भागे हुए घुमक्कड़ी की माता वैसा नहीं कर सकती। वह जीवन-भर त्राशा लगाये बैठी रहती है। विवा-हिता पत्नी श्रीर बंधु-बांधव भी श्राशा लगाये रहते हैं, कि कभी वह भगोड़ा फिर घर श्रायेगा।कई बार इसके विचित्र परिणाम पैदा होते हैं। पुक धुमक्कड घूमते घामते किसी अपरिचित गांव में चला गया। लोगों में कानाफसी हुई। उसे बढ़ी श्रावभगत से एक द्वार पर रखा गया। घुमक्कइ उनके हाथ की रसोई नहीं खा सकता था, इसलिए भोजन का सारा सामान और बर्तन रख दिया गया। भोजभ खाते-खाते घुमक्कड़ को समक्रने में देर न लगी कि उसको घेरा जा रहा है। शायद उस गाँव का कोई एक तरुण दस-बारह साल से भाग गया था। उसकी स्त्री घर में थी। उक्त तरुण ने किसी बहाने गाँव से भागने में सफ-स्तता पाई । लोग उसके इन्कार करने पर भी यह मानने के लिए लेयार न थे. कि वह वही श्रादमी नहीं है। श्रारा जिले में तो यहाँ तक हो गया कि लोगों ने इन्कार करने पर भी एक झमक्कड़ को मजबूर किया। भाग्य पर छोड़कर घुमक्कड़ बैठ गया। जिसके नाम पर बैटा था, उसके नाम पर उसने एक सन्तान पैदा की, फिर श्रसली श्रादमी श्रा गया। ऐसी स्थिति न पैदा करने के लिए घुमक्कड़ क्या कर सकता था ? वह जगह-जगह से चिट्टी कैसे लिख सकता था कि मैं दूर हूं। चिट्टी लिखना भी लोगों के दिल में क्ठी ग्राशा पदा करना है।

निरुद्देश्य युमक्कड़ होने का बहुतों को मौका मिलता है। युमक्कड़ शास्त्र यभो तक लिखा नहीं गया था, इसलिए युमक्कड़ी का क्या उद्देश्य है, यह कैसे लोगों को पता लगता ? यभो तक लोग युमक्कड़ी को साधन मानते थे, और साध्य मानते थे मुक्ति — देव-दर्शन को; लेकिन युमक्कड़ी केवल साधन नहीं, वह साथ ही साध्य भी है। निरुद्देश्य निकलने वालं युमक्कड़ याजनम निरुद्देश्य रह जायं, खूंटे से बंधें नहीं, तो भी हो सकता है कि पीछे कोई उद्देश्य भी दिखाई पहने लगे। सोद्देश्य और निरुद्देश्य जैसी भी युमक्कड़ी हो, वह सभी कल्यासकारिसी हैं।

धुमक्कड असंग और निर्केंप रहता है, यद्यपि मानव के प्रति उसके हृदय में अपार स्नेह है। यही अपार स्नेह उसके हृदय में अनन्त प्रकार की स्मृतियां एकत्रित कर देता है। वह कहीं किसीसे द्वेष करने के लिए नहीं जाता। ऐसे श्रादमी के श्रकारण द्वेष करने वाले भी कम ही हो सकते हैं. इसलिए उसे हर जगह से मधुर स्मृतियां ही जमा करने को मिलती हैं। हो सकता है, तरुणाई के गरम खून, या अनुभव-हीनता के कारण घुमक्कड़ कभी किसी के साथ अन्याय कर बैठे, इसके लिए उसे सावधान कर देना श्रावश्यक है। धुमक्कड़ कभी स्थायी बन्धु-बान्धवों को नहीं पा सकता, किंतु जो बन्धु-बान्धव उसे मिलते हैं, उनमें ग्रस्थायी साकार बन्धु-बान्धव ही नहीं, बल्कि कितने ही स्थायी निराकार भी होते हैं, जो कि उसकी स्मृति में रहते हैं। स्मृति में रहने पर भी वह उसी तरह हर्ष-विषाद पैदा करते हैं, जैसे कि साकार बन्धुजन । यदि घुमक्कड ने श्रपनी यात्रा में कहीं भी किसी के साथ तुरा किया तो वह उसकी स्मृति में बैठकर घुमक्कड़ से बदला लेता है। घुमक्कड़ कितना ही चाहता है कि अपने किये हुए अन्याय श्रीर उसके भागी को समृति से निकाल दे, किंतु यह उसकी शक्ति से बाहर है। जब कभी उस श्रत्याचार-भागी व्यक्ति श्रीर उस पर किये गए श्रपने श्रत्याचार की स्मृति श्राती है, तो घुमक्कड़ के हृदय में टीस लगने लगती है। इसलिए घुमक्कड़ को सदा सावधान रहने की आव श्यकता है कि वह कभी ऐसी उत्पीडक स्मृति को पैदा न होने दे।

धुमक्कड़ ने यदि किसी के साथ श्रन्छा वर्ताव, उपकार किया है, चाहे वह उसे मुंह से प्रकट करना कभी पसन्द नहीं करता, किंतु उससे उसे श्रात्मसंतोष श्रवश्य होता है। जिन्होंने धुमक्कड़ के ऊपर उपकार किया है, सान्त्वना दी है, या श्रपने संग से प्रसन्न किया है; धुमक्कड़ उन्हें कभी नहीं भूल सकता। कृतज्ञता श्रीर कृतविद्ता धुमक्कड़ के स्वभाव में है। वह श्रपनी कृतज्ञता को वासी श्रीर लेखनी से प्रकट करता है श्रीर हृदय में भी उसका श्रनुस्मरस्य करता है।

यात्रा में घुमक्कड़ के सामने नित्य नये दृश्य श्राते रहते हैं। इनके श्रतिरिक्त खाली घड़ियों में उसके सामने सारे श्रतीत के दृश्य स्मृति के रूप में प्रकट होते रहते हैं। यह स्मृतियां बुमक्कड़ को बड़ी सान्त्वना देती हैं। जीवन में जिन वस्तुर्थों से वह वंचित रहा उनकी प्राप्ति यह मधुर स्मृतियाँ कराती हैं। लोगों को याद रखना चाहिए, कि शुमक्कड एक जगह न टहर सकने पर भी श्रपने परिचित मित्रों को सदा श्रपने पास रखता है। घुमक्कड़ कभी लंटन या मास्को के एक बड़े होटल में ठहरा होता है, जहाँ की दुनिया ही बिलकुल दूसरी हैं; किंतु वहाँ से भी उसकी स्मृतियां उसे तिब्बत के किसी गाँव में ले जाती हैं। उस दिन थका-मोंदा बड़े डांडे को पार करके एक घुमक्द इ सूर्यास्त के बाद उस गांव में पहुँचा था। बड़े घर वालों ने उसे रहने की जगह नहीं दी, उन्होंने कोई-न-कोई बहाना कर दिया। श्रंत में वह एक श्रश्यन्त गरीब के घर में गया। उसे घर भी नहीं कहना चाहिए, किसी पुराने खंडहर की छा-छुकर गरीब ने श्रपने श्रौर बच्चों के लिए वहां स्थान बना लिया था। गरीब हृद्य खोलकर घुमक्कड से मिला। घुमक्कड़ रास्ते की सारी तक-लीफें भूल गया। गाँव वालों का रूखा रख चिरविस्मृत हो गया। उसने उस छोटे परिवार के जीवन ख्रौर कठिनाई की देखा,साथ ही उसने विशाल हृदय को जैसा उसने उस गांव में नहीं पाया था। घुमक्कड़ के पास जो कुछ भी देने लायक था, चलते वक्त उसे उसने उस परिवार की दे दिया, किंतु वह सममता था कि सिर्फ इतने से वह पूरी तौर से कृत-

ज्ञता प्रकट नहीं कर सकता।

घुमक्कड़ के जीवन में ऐसी बहुत-सी स्मृतियां होती हैं। जो कड़ स्मृतियां यदि घर करके बेटी होती हैं, उनमें अपने किये हुए अन्याय की स्मृति दुस्सह हो उठती है। कृत्ज्ञता और कृतवेदिता घुमक्कड़ का गुण है। यह जानता है कि हर रोज कितने लोग अकारण ही उसकी सहायता के लिए तैयार हें और वह उनके लिए कुछ भी नहीं कर सकता। उसे एक बार का परिचित दूसरी बार शायद ही मिलता है, घुमक्कड़ इच्छा रहने पर भी वहां दूसरी बार शायद ही मिलता है, घुमक्कड़ इच्छा रहने पर भी वहां दूसरी बार जा ही नहीं पाता। जाता भी है तो उस समय तक बारह साल का एक युग बीत गया रहता है। उस समय अक्सर अधिकांश परिचित चेहरे दिखलाई नहीं पढ़ते, जिन्होंने उसके साथ मीठी-मीठी बातें की थीं, हर तरह की सहायता की थी। बारह वर्ष के बाद वाणी से भी कृतज्ञता प्रकट करने का उसे अवसर नहीं मिलता। इसके लिए घुमकड़ के हदय में मीठी टीस लगती है—उस पुरुष की स्मृति में मिटास अधिक होती है उसके वियोग में टीस।

शुमकड़ के हृदय में जीवन की स्मृतियां वैसे ही संचित होती रहती हैं, किन्तु श्रन्छा है वह श्रपनी डायरी में हन स्मृतियों का उल्लेख करता जाय। कभी यात्रा लिखने की इच्छा होने पर यह स्मृति-संचिकाएं बहुत काम श्राती हैं। श्रपने काम नहीं श्रायें, तो भी, हो सकता है, दूसरे के काम श्रायें। डायरी शुमकड़ के लिए उपयोगी चीज है। यदि शुमकड़ ने जिस दिन से इस पथ पर पैर रखा, उसी दिन से वह डायरी लिखने लगे, तो बहुत श्रन्छा हो। ऐसा न करने वालों को पीछे पछतावा होता है। शुमक्कड़ का जब कोई घर-द्वार नहीं, तो वह साल-साल की डायरी कहां सुरचित रखेगा? यह कोई कांठन शरन नहीं है। शुमक्कड़ श्रपनी यात्रा में ऐतिहासिक महत्व की पुस्तकें शाप्त कर सकता है, चित्रपट या मूर्तियां जमा कर सकता है। उसके पास इनके रखने की जगह नहीं, किन्तु क्या ऐसा करने से वह बाज श्रा सकता है? वह उन्हें जमा करके उपयुक्त स्थान में भेज सकता है। यदि मैं यह समस्ता कि बे-श्रवार

का होने के कारण क्यों किसी चीज को जमा करूं.तो मैं समसता हूँ पीछे मुफे इसका बरावर पछतावा रहता। मैंने तिन्वत में पुराने सुन्दर-चित्र खरीदे, हस्तिलिखित पुस्तकें जमा कीं, श्रौर भी जो ऐतिहासिक, सांस्कृतिक महत्व की चीजें भिलीं, उन्हें जमा करते समय कभी नहीं ख्याल किया कि बे-घर के छादमी को ऐसा करना ठीक नहीं। पहली यात्र। में बाईस खच्चर पुस्तकें, श्रौर दूसरी चीजें में साथ लाया। मैं जानता था कि उन का महत्व है, श्रौर हमारे देश में सुरचित रखने का स्थान भी भिल जायगा। कुछ समय बाद वह चीजें पटना म्यूजियम को दे दीं। श्रगती यात्राश्रों में भी जब-जब कोई महत्वपूर्ण चीज हाथ लगी, मैं लाता रहा। उनमें से कुछ पटना म्यूजियम को दों, कुछ को काशी के कला-भवन में श्रौर कुछ चीजें प्रयाग म्युनिसिवल म्युजियम में भी । व्यक्तियों को ऐसी चीजें देना मुक्ते कभी पसंद नहीं रहा। बहुत श्राग्रह करने पर किन्हीं मित्रों को सिर्फ दो-एक ही ऐसी चीजें लाकर दीं। वसकड़ अपनी यात्रा में कितनी ही दिलचस्प चीजें पा सकता है। यदि वह सुरचित जगह पर हैं तो कोई बात नहीं; यदि धरचित जगह पर हैं, तो उन्हें श्रवश्य सुराचित जगह पर पहुंचाना घुमन्कड़ का कर्तेच्य है। हां, यह देखते हुए कि वैसाकरने से घुमक्कड़-पन्थ पर कोई लांछन न लगे।

वुमक्कड़ को इस बात का भी ख्याल मन में लाना नहीं चाहिए, कि उसने चीजों को इतनी किटनाई से संग्रह किया, लेकिन लोगों ने उस संग्रह से उसका नाम हटा दिया। एक बार ऐसा देखा गया: एक घुमक्कड़ ने बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएं एक संस्था को दी थीं। संस्था के प्रांचकारियों ने पहले उन चीजों के साथ दायक का नाम लिखकर टांग दिया था, फिर किसी समय नाम को हटा दिया। घुमक्कड़ के एक साथी को इसका बहुत चीभ हुआ। लेकिन घुमक्कड़ को इसका कोई ख्याल नहीं हुआ। उसने कहा: यदि यह चीजें इतनी नगयय हैं, तो दायक का नाम रहने से ही क्या होता है ? यदि वह बड़े महत्व की वस्तुएं हैं, तो वर्तमान श्रिधिकारियों का ऐसा करना केवल उपहासास्यद चेष्टा

है, बर्घोकि वह महत्वपूर्ण वस्तुएं केसे यहां पहुँचीं, बया इस बात को इस्रमाली पीडियों से छिपाया जा सकता है ?

जो भी हो, श्रपने घुमक्कड़ रहने पर भी संस्थाओं के लिए जो भी बस्तुएं संग्रहीत हो सकें, उनका संग्रह करना चाहिए। ऐसी ही किसी संस्था में वह श्रपनी साल साल की डायरी भी रख सकता है। व्यक्ति के ऊपर भरोसा नहीं करना चाहिए। व्यक्ति का क्या ठिकाना है ? न जाने कब चल बसे, फिर उसके बाद उत्तराधिकारी इन वस्तुओं का क्या मृल्य समर्भेगे ! बहुत-सी श्रनमोल निधियों के साथ उत्तराधि-कारियों का ग्रत्याचार ग्रविदित नहीं है। उस दिन ट्रेन दस घंटा बाद मिलने वाली थी, इसलिए कटनो में डाक्टर हीरालाल जी का घर देखने चले गये । भारतीय इतिहास, पुरातत्व के महान् गवेषक श्रीर परम श्रनु-रागी हीरालाल श्रपने जीवन में कितनी ही ऐतिहासिक सामग्रियां जमा करते रहे। श्रव भी उनकी जमा की हुई कितनी ही मूर्तियाँ सीमेंट के द्रवाजे में मढ़ी लगी थीं। उनके निजी पुस्तकालय में बहुत-से महत्व पूर्ण श्रौर कितने ही दुर्लभ प्रन्थ हैं। डाक्टर हीरालाल के भतीजे श्रपने कीर्तिशाली चचा की चीजों का महत्वसमम्तते हैं, ग्रतः चाहते थे कि उन्हें कहीं ऐसी जगह रख दिया जाय, जहां वह सुरचित रह सकें। उनको कटनी ही की किसी संस्था में रखछोड़ने का मोह था। मैंने कहा---श्राप इन्हें सागर विश्वविद्यालय को दे दें। वहां इन वस्तुओं से पूरा लाभ उठाया जा सकता है, स्रोर चिरस्थायी तथा सुरन्तित भी रखा जा सकता है। उन्होंने इस सलाह को पसन्द किया। मेरे मित्र डाक्टर जायसवाल श्रिधिक श्रम्मोची थे। उन्होंने कानून की पुस्तकें छोड़ श्रपने सारे पुस्तकालय को हिन्दू विश्वविद्यालय के नाम पहले ही लिख दिया था।

घुमकह का श्रपना घर न रहने के कारण इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए, कि श्रपने पास घीरे-घीरे बड़ा पुस्तकालय या संग्रहालय जमा हो जायगा। जो भी महत्वपूर्ण चीज हाथ लगे, उसे सुपात्र संस्था में देते रहना चाहिए। सुपात्र संस्था के लिए श्रावश्यक नहीं है कि वह धुमक्कड़ की श्रपनी ही जन्मभूमि की हो। वह जिस देश में भी घूम रहा है, वहां की संस्था को भो दे सकता है।

धमक्कड़ शास्त्र समाप्त हो रहा है। शास्त्र होने से यह नहीं समऋना चाहिए कि यह पूर्ण है । कोई भी शास्त्र पहले ही कत्ती के हाथों पूर्णता नहीं प्राप्त करता। जब उस शास्त्र पर वाद-विवाद, खण्डन-मण्डन होते हैं, तब शास्त्र में पूर्णता श्राने लगती है। घुमक्कड़-शास्त्र से घमक्कड़ी पन्थ बहुत पुराना है। घुमक्कड़-चयां मानव के श्रादिम काल से चली श्राई है, लेकिन यह शास्त्र जून १६४६ से पहले नहीं लिखा जासका। किसीने इसके महत्व को नहीं समका। वेसे धार्मिक घुमक्कड़ों के पथ-प्रदर्शन के लिए, कितना ही बात पहले भी लिखी गई थीं। सबसे प्राचीन संग्रह हमें बीदों के प्रातिमोत्त-सूत्रों के रूप में मिलता है। उनका ऐतिहासिक महत्व बहुत है श्रीर हम कहेंगे कि हरएक घुमक्कड़ को एक बार उनका पारायण अवश्य करना चाहिए ( इन सूत्रों का मैंने विनयपिटक ग्रंथमें श्रनुवाद कर दिया है )। उनके महत्व को मानते हुए भी मैं नम्नतापूर्वक कहूंगा, कि घुमक्कड़-शास्त्र लिखने का यह पहला उपक्रम है। यदि हमारे पाठक-पाठिकाएं चाहते हैं कि इस शास्त्र की ज़ुटियां दूर हो जायं, तो वह अवश्य लेखक के पास श्रपने विचार लिख भेजें। हो सकता है, इस शास्त्र को देखकर इससे भी श्रन्छा सांगोपांग ग्रन्थ कोई घुमकड़ लिख डाले. उसे देलकर इन पंक्तियों के जेखक को बड़ी प्रसन्नता होगी। इस प्रथम प्रयास का श्राभिप्राय ही यह है, कि श्रिधिक श्रानुभव तथा चमतावाले विचारक इस विषय को उपेचित न करें, श्रौर श्रपनी समर्थ लेखनी को इस पर चलाएं। त्राने वाली पीड़ियों में श्रवश्य कितने ही पुरुष पैदा होंगे, जो श्रधिक निर्दोष प्रनथ की रचना कर सकेंगे। उस वक्त लेखक जैसों को यह जान कर संतोष होगा, कि यह भार श्रिधिक शक्तिशाली कंधों पर पड़ा।

"जयतु जयतु घुमक्कड़-पन्था।"